ओ३म्

आर्य प्रतिनिधि सभा म.प्र. व विदर्भ का मुख पत्र । जनवरी-फरवरी २०१८

आर्य सेवक

नववर्ष २०१८ में यज्ञ संपन्न करते सभा के प्रतिनिधी

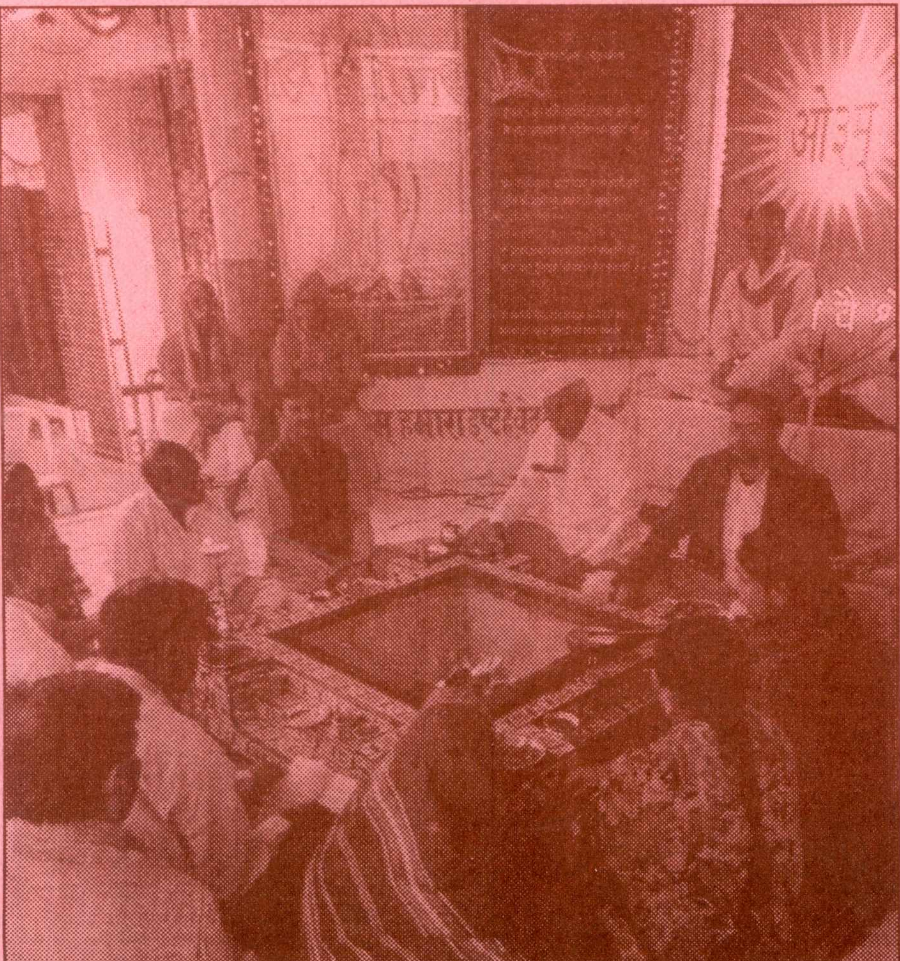

सभा कार्यालय - दयानन्द भवन, मंगलवारी बाजार, सदर, नागपुर (महाराष्ट्र)

ओ३म्

आर्य सेवक

आर्य प्रतिनिधि सभा म. प्र. व विदर्भ का मुखपत्र

वर्ष - ११६ अंक १३
सृष्टि संवत १९६०८५३११८
दयानन्दाब्द - १९२
संवत - २०७४
सन् २०१८ जनवरी-फरवरी

प्रधान
पं. सत्यवीर शास्त्री, अमरावती
मो.नं. ०९४२२१५५८३६

मंत्री एवं प्रबंधक सम्पादक
अशोक यादव
मो. ०९३७३१२११६३
०९५११८३८९८१

सम्पादक एवं उपप्रधान
जयसिंह गायकवाड़, जबलपुर
मो. ०९४२४६८५०९१
e-mail : jasysinghgaekwad@gmail.com
निवास - ५८०, गुप्तेश्वर वार्ड,
कृपाल चौक, मदन महल, जबलपुर

सह सम्पादक
प्रा. अनिल शर्मा, नागपुर
मो. ९३७३१२११६४
मनोज शर्मा
मो. ९५६१०७९८९४

कार्यालय पता :
दयानन्द भवन, मंगलवारी बाजार,
सदर, नागपुर-४४०००१ महाराष्ट्र
दूरभाष क्र. ०७१२-२५९५५५६

अनुक्रमणिका

क्र.	लेख	लेखक	पृष्ठ क्र.
१.	तीन अनादि शक्तियां	विद्यासागर शास्त्री व्याख्याता	२-६
२.	धर्म क्या है ?	-	६
३.	काम आयें सर्वदा शुभकामनाएं	देवनारायण भारद्वाज	७-९
४.	कुछ तड़प-कुछ झड़प	प्रा. राजेन्द्र जिज्ञासु	१०-१३
५.	आज लगाओ नारा	विद्यासागर शास्त्री	१३
६.	अमृतश्रुते	-	१४-१६
७.	योगीराज दयानन्द	स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती	१७-१९
८.	आचार्य हमें मानव हितैषी बनाए	महात्मा चैतन्य मुनी	२०-२१

==000==

- आवश्यक सुचना -

आर्य प्रतिनिधि सभा मध्यप्रदेश व विदर्भ से समबद्धता प्राप्त समस्त आर्य समाजों को पुर्व मे दिनांक १३/२/०९, २०/४/१०, २१/४/११, ४//१/१२, २७/३/१२, २७/११/१२, १०/४/१४, २०/११/१४, १५/१२/१४, २१/४/१५, १४/१२/१६, २७/४/१७ तथा मुख्य पत्र आर्यसेवक दिसंबर-जनवरी २०१५ के अंक द्वारा वार्षिक वृंतात परिविष्ट फार्म प्रकाशित कि गई थी। जन आर्य समाजों ने अभी तक वार्षिक वृत्तांत जमा नहीं किया है, वे जल्द से जल्द जमा कर दे व आनेवाले त्रिवार्षिक अधिवेशन मे भाग ले सके।

पं. सत्यवीर शास्त्री-प्रधान
आर्य प्रतिनिधि सभा, मध्यप्रदेश व विदर्भ-नागपुर
पं.सं. एफ-१०९ (एन)

टीप - प्रकाशित्त कृतियों में व्यक्ति विचार लेखकों के है इनसे आर्य सेवक का सहमत होना आवश्यक नहीं है।

तीन अनादि शक्तियां

लेखक - **विद्यासागर शास्त्री व्याखाता**

त्रय : **केशिनः ऋतुथा विचक्षते, संवत्सरे वपत एक एषाम्।**
विश्व मे को अभिचष्टे शचोभिः, ध्राजिरेकस्य दहशे न रूपम्।। १/१६४/४४

ऋग्वेद १/१६४/४४।।

१) ब्रह्म, जीव तथा प्रकृति ये तीन जगत् का कारण है। इस मन्त्र में इन तीनों का स्वरूप बताया है। परमेश्वर जीवों को कर्मफल देने के लिए प्रकृति में मानों बीज डालता है। अर्थात् कार्य के योग्य बनाता है। जीवन अपने कर्मों के अनुसार भले बुरे दोनों प्रकार के भोगों को भोगता है। प्रकृति का वेग = कार्य तो इन चर्म चक्षुओं की दिखाई देता है, किन्तु सूक्ष्म होने के कारण उसका रूप दिखाई नहीं देता। तीनों को वेदने केशी=प्रकाशमय कहा है। परमात्मा तथा जीव के चेतन होने कारण उनके प्रकाशमय होने में सन्देह नहीं, प्रकृति भी सत्त्वगुणवाली होने से गौण रूप से प्रकाशमय होने में सन्देह नहीं है, क्योंकि सत्त्वगुण लघु तथा प्रकाशक माना जाता है।

२) यह सारा संसार इस परम प्रसिद्ध, कमनीय, चाहने योग्य गुणों द्वारा, सर्व पालकदाता प्रभु का है। उस प्रभु का (मध्यम) गुणों से मंझला (भ्राता) भाई (अश्न) खानेवाला भोक्ता जीव है। (तृतीय भ्राता) तीसरा भाई भोग्य पदार्थों का आधार है। इससंसार में (विश्पति) प्रजापालक है।

परमेश्वर में अनन्त गुण है। अतःएव गुणों की दृष्टि से वह सब से बड़ा है। प्रकृति में विकार आता है, जीव भी बद्ध-मुक्त दशा को प्राप्त करता है। परमेश्वर एक रस रहता है। जीव+प्रकृति नवीन नवीन अवस्था में आने के कारण मानों परमात्मा से काला पेक्षा से छोटे हो जाते है। जीव गुणों के कारण तीनों में मध्यम है। प्रकृति सर्वथा चेतना विहीन = अज्ञ है। परमेश्वर सर्वज्ञ है। जीव न अज्ञ है और न सर्वज्ञ, बल्कि अल्पज्ञ है। इसलिए जीव मध्यवर्ती है। तीसरी प्रकृति है, जिससे भोग मिलते है।

भोगापवर्गार्थे दृश्यम् सूत्र को घृतपृष्ठ ने कह दिया है। घृत जहाँ भोग का उपलक्षण है, वहाँ घृत का प्रदीप्त अर्थ होने से वह मोक्षवाचक भी है।

प्रकृति-प्रधान के सातपुत्र - १) महत्तत्व २) अहंकार ३ से ७ तन्मात्राएं। इनका विस्तार सांख्य दर्शन में है।

मन्त्र : ये अर्वाङ् मध्य उतवा चुराणं वेदं विद्वांसमभितो वदन्ति। आदित्यमेव ते परिवदन्ति सर्वे अग्नि द्वितीयं त्रिवृत्तंच हंसम्।

जो विद्वान उस समय बीच में अथवा पूर्वकाल में पुरातन वेद के जाननेवाले का सब ओर से वर्णन करते है, वे सब मानों अखण्डनीय एक रस प्रभु की तथा दूसरे ज्ञान स्वरूप जीव की और त्रिगुणात्मक हंस प्रधान = प्रकृति की पूर्णतया स्तुति करते हैं।

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यन श्नन्न्यो अभि चाकशीति।।

ऋग्वेद १।१६४/२०

कृ.प.उ.

मन्त्र का अर्थ : (सयुजा सखाया) साथ मिले जुले मित्र (द्वा सुपर्णा) दो सुपर्ण (समानंवृक्षं) एक ही वृक्ष पर (परिषस्वजाते) साथ साथ रहते है। (तयोः अन्यः) उनमें से एक (स्वादुपिप्पलं) मीठा फल (अत्ति) खाता है (अन्य) दुसरा (अनश्नन्) भोग न करता हुआ (अभिचाकशीति) प्रकाश देता है।

जीवात्मा और परमात्मा ये दोनों प्रकृत्ति रूपी एक वृक्ष पर बैठते हैं। जीवात्मा कर्म के फल खाता है, परन्तु

परमात्मा कुछ न भोगता हुआ प्रकाशमान होता है।

ये दोनों परस्पर मित्र हैं, विशेष कर परमात्मा जीवात्मा की उत्तम सहायता करने के कारण उसका सच्चा मित्र है। उसी को बन्धु, माता, पिता आदि नामों से वेद में अन्यत्र कहा गया है।

मित्र के विषय में निम्न मन्त्र देखिए।

मन्त्र : (यस्मिन् वृक्षे) जिस वृक्ष में (मध्वदः सुपर्णाः) मीठा फल खानेवाले पक्षी (निविशन्ते) रहते हैं और (विश्वे) सब (अधिसुवते) सन्तान उत्पन्न करते है। (तस्य इत्) उसीका ही (स्वादु पिप्पलम् आहुः) मीठा फल है ऐसा कहते है। (यः) जो(अग्रे) प्रारंभ में उस (पितरं) अपने पिता को न(वेद) नहीं जानता (तत्न-उन्नशत्) वह उस आनन्द को प्राप्त नहीं कर सकता।

प्रकृति के जगदूपी वृक्षपर जो मीठे फल लगते हैं उनको जीवात्मा गण खाते हैं। उसी वृक्ष पर रहकर सन्तान उत्पन्न करते हैं। इन का पिता परमात्मा है। जो इस रहस्य को जानते है वे बन्धन से छूट जाते हैं, परन्तु जो उसको जानने की परवाह नहीं करते वे सुख से दूर हो जाते है।

मन्त्र : ओ३म् उद्वयं तमसस्परि ज्योतिष्पश्यन्त उत्तरम् । देवं देवत्रा सूयमगन्म ज्योतिरुत्तमम्।

(वयं) हम सब (तमसः परि) अन्धकार प्रकृति से (उत्) ऊपर उठकर (उत्तरं ज्योतिः) अधिक उच्च प्रकाश=जीवात्मा को (पश्यन्तः) देखते हुए (देवत्रा देवं) देवों में देव उस (उत्तमं ज्योतिः सूर्यं) उत्तम प्रकाश पूर्ण सूर्य=गतिदाता प्रभु को (अगन्म) प्राप्त करें।

अन्धकारमय प्राकृतिक अवस्था से ऊपर उठकर, आत्मिक प्रकाश का अनुभव करते हुए परमात्मा की प्राप्ति करें। यह आत्मोन्नति का क्रम इस मन्त्र में देखने योग्य है।

एक परमात्मदेव सबका परमपिता है। सब जीवात्म गण उसके अमृत पुत्र है। और प्रकृति उनकी माता तुल्य है। यह परमपिता सबका धारण पोषण और वर्धन करने का सामर्थ्य रखता हे और उस सामर्थ्य का उपयोग करके वह सबका धारण पालन पोषणकर रहा है।

हे क्रतो! कर्मशील जीवात्मन्। जन्म और मृत्यु से मुक्ति प्राप्त करने के लिए ओ३म् का मन, वचन कर्म से स्मरण कर।

संसारेऽपि सतीन्द्रजामपरं यद्यस्ति
इन्द्रजालमपरं यद्यस्ति तेनाऽपि किम्?
यह भर्तृहरि का कथन है।

मनुष्य के लिए संसार से अधिक बडा और कोई भी इन्द्रजाल=मायाजाल नहीं है।

मनुष्य इस संसार के माया जाल से छुटकारा प्राप्त करने के लिए जितना भभ प्रयत्न करता है अर्थात् दिन प्रतिदिन की समस्याओं को सुलझाने का जितना भी प्रयत्न करता है उतना ही अधिक उसमें उलझता जाता है यह जानते हुए भी कि यह संसार एक ऐसा बन्धन है जो जीवात्मा इसके बंधन में बंध जाता उसे यह संसार (बन्धन में बंधे हुए जीवात्मा को उसकी इच्छा से मुक्त नहीं करता जब तक कि यह जीव अपनी मुक्ति के लिए उचित और अनुकूल दिशा में ठीक ठीक प्रयत्न नहीं करता।

यह संसार अपने स्वाभाविक नियम से सभी जीवों को कर्मबन्धन में बांधकर भोगों के अधीन कर लेता है।

अविवेकी जीव इन सांसारिक भोगों को ही सच्चा सुख मान बैठता है परन्तु संसार में सभी जीव अविवेकी नहीं होते, हाँ, अविवेकी जीव संख्या की दृष्टि से अधिक होते है। इस अवस्था में प्रश्न उठता है कि विवेक किसे कहते है? या क्या होता है?

उत्तर- सत्यासत्यं विविच्य यत् सत्यं निश्चयते सः विवेकः।

विवेकः विद्यते यस्मिन् सो विवेकः इति

अर्थात् सत्य और असत्य् का अच्छी प्रकार से विवेचन (गहन सोच विचार) करके जिस सत्य = यथार्थ ज्ञान का निश्चय किया जाता है।

उसे विवेक कहते है। यह विवेक जिस पुरुष में होता है वह विवेको कहलाता है।

अब प्रश्न उठता है कि सत्य और असत्य का किस विषय में ज्ञान होना विवेक कहलाता है? इस प्रश्न के उत्तर पर महामनीषी ऋषि मुनियों विचार विमर्श किया है।

१) सदेव सौम्य! इदम् अग्र आसीत्

छान्दोग्य उपनिषद्

२) असद्वा इदम् अग्र आसीत्

तैत्तिरीय उपनिषद

उपर्युक्त विषय पर अर्थात् सत् और असत् पर विचार करना तथा सत् और असत् पर विचार करना तथा सत् क्या है और असत् क्या है इसका विचार करके निर्णय करना इस संसार की स्थिति सत् है या असत् इस विषय का ज्ञान प्राप्त करना विवेक कहलाता है। सत् = सत्य, असत् = असत्य का निर्णय देते हुए कुछ विद्वानों का मत है –

श्लोकार्धेन प्रवक्ष्यामि यदुक्तं ग्रन्थ कोटिभिः।

ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवां ब्रह्मैव नापरः।।

इस श्लोक में ब्रह्म को सत्य और जगत् को मिथ्यान्=असत्य बताया गया है।

इस मत के अनुसार जगत् को असत्य मानकर त्याग दिया जाए तो क्या जीव ब्रह्म बन जायेगा? नहीं, क्योंकि जीव कभी भी ब्रह्म न था न है। न बन सकता है।

क्योंकि जगत् वह साधन है जो जीव को ब्रह्म तक पहुँचाने में सहायक बनता है।

यह शरीर जिस पर जीव गर्व करता है जगत की देने है।

।। पांच भौतिको देहः।।

यह शरीर प्रकृति के तीन तत्त्व – सांख्य दर्शन में स्पष्ट निर्देश दिया है –

सत्त्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृत्तिः

प्रकते महान् महतोऽहंकारः अहंकारात्

पंच तन्मात्राणि–उभयमिन्द्रियं पंचतन्मात्रेभ्यः

स्थूलभूतानि पुरुष इति पंचविंशतिर्गणः।।

अर्थात् – सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण इन तीनों की समान अवस्था (साम्यावस्था) प्रकृति होती है।

१) प्रकाश २) गति ३) स्थिति रूप प्रकृति की शक्तियां है। इन तीन शक्ति रूपों की साम्यावस्था अर्थात् निश्चेस्टा अवस्था प्रकृति कही जाती है।

इसी प्रकृति से महत् तत्त्व उत्पन्न होता है। महत्तत्त्व से अहंकार उत्पन्न होता है। यह प्रकृति दूसरा विकार होता है। अहंकार से पंचतन्मात्राएं उत्पन्न होती है। बाह्य जगत् में पंच तन्मात्रा अर्थात् सूक्ष्मभूत उत्पन्न होते है। – आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथिवी इन के सूक्ष्म रूप उत्पन्न होते है। यह प्रकृति का तीसरा विकार होता है। इन पांचों को ही सूक्ष्मभूत कहते है। इन पांच सूक्ष्म भूतों से (आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथिवी) ये पंच महाभूत उत्पन्न होते है। पांच सूक्ष्म भूतों से – उभय इन्द्रिय अर्थात् शरीर में ज्ञानार्जन कर्म करने के लिए – पंच ज्ञानेन्द्रियां उत्पन्न होती है। उभय का अर्थ दो प्रकार की इन्द्रियां और पांच कर्मेन्द्रियां उत्पन्न उत्पन्न होती है। तन्मात्राओं से अर्थात् सूक्ष्म भॅतों से स्थू भॅत अर्थात् पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश उत्पन्न होते है। व्यक्त स्वरूप में आते है।

पुरूषः = चेतन सत्ता = आत्मा उन से भिन्न है।

इस प्रकार (पंचविंशतिः गण) पच्चीस पदार्थों का गण जानना चाहिए (समझना) चाहिए। और यही विवेचनीय है। विवेक में उपयुक्त - विवेचन अति आवश्यक है।

उपर्युक्त कथन निम्नलिखित वेद मन्त्रों की व्याख्या है। कृ.प.उ.

१) ओ३म् ईशावास्यमिदं सर्वं

यत् किंच जगत्यां जगत्

यजुर्वेद अध्याय ४० मन्त्र-।

२) वेदाह मेतं पुरूषं महान्तम्

आदित्यवर्णं तमसः परस्तात्

तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति

नान्य पन्थाःविद्यतेऽयनाय।।

अर्थात् - इस महान् आदित्य वर्णवाले तमसः = अन्धकार से परे परमपुरूष= ईश्वर को विवेक ख्याति द्वारा जानने के पश्चात् ही अतिमृत्यु र्थात् जन्म मृत्यु से छुटकारा = मुक्ति प्राप्त की जा सकती है। नान्यः पन्थाः विद्यतेऽथनाय) विवेकख्याति के बिना परम पुरूष परमात्मा को जाने बिना मोक्ष की प्राप्ति नहीं हो सकती। जन्म मृत्यु के बन्धन से मुक्त होने का अन्य पन्थाः = अन्य मार्ग ही नहीं है।

शरीर की उपादेयता

जीवन को मोक्ष प्राप्त करने के लिए शरीर की अत्यन्त आवश्यकता होती है।

इसी बात को कठोन्निषद् वल्ली-३ काण्ड ३ में समझाया है।

आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव च।

बुद्धिं तु सारथिंविद्धि मनः प्रग्रह मेव च ।।

अथ्रात् - आत्मा को रथवान समझो, शरीर को रथ समझो, बुद्धि को सारथि चलाने वाला समझो, मन को इन्द्रियरूपयी घोडों की लगाम समझो। इसी विषय को समझाने केलिए अगली वल्ली - श्लोक में और अधिक वर्णन करके समझाया है -

इन्द्रियाणि ह्यानाहुः विषयान् तेषु गोचरान्।

आत्मेन्द्रिय मनो युक्तं भोक्ता इत्याहु मनीपिणः।।

मनीबीजन आत्मा ज्ञानेन्द्रियां - कर्मेन्द्रियां व मन इन से मुक्त आत्म को भोक्ता कहते हैं।

न्याय दर्शन में महर्षि गौतम ने जीवात्मा की परिभाषा निम्न प्रकार से की है।

इच्छा द्वेष प्रयत्न सुख दुःख ज्ञानानि आत्मनो लिङ्म्

अध्याय - १ सूत्र-१०

वैशेषिक दर्शन में जीवात्मा की परिभाषा निम्न प्रकार से दी है -

प्राणापान निमेषोन्मेष जीवन मनोगतीन्द्रियान्तर्विकाराः सुख दुःख प्रत्नाश्चात्मनो लिङ्गम्।।

अर्थात् - १) बाहर से वायु का शरीर के अन्दर लाना प्राण कहा जाता है।

२) शरीर के अन्दर से वायु को बाहर निकालना अपान कहा जाता है।

३) प्राणधारण और आँखों के पलकों को झपकाना और खोलना = निमेषोन्मेष - जीवन कहा जाता है।

४) मनन विचार और ज्ञान मन का कार्य है और बिना बाधा के जहाँ तहाँ गमन करना मनोगति कही जाती है।

५) इन्द्रियों का विषयों में प्रवृत्त होना और विषयों को ग्रहण करना इन्द्रिय कहा जाता है।

६) भूख, प्यास, ज्वर, पीडा आदि विकार -अन्तर्विकार कहे जाते है।
७) सुखम्= सु अर्थात् अच्छा लगना एव अर्थात् इन्द्रियों को अच्छा लगना को सुख कहते है।
८) दुःखम् = दुः अर्थात् इन्द्रियों को अच्छा न लगना उसे दुःख कहते है।
९) इच्छा = अप्राप्त को प्राप्त करने के लिए बार बार ललचाना।
१०) द्वेष = दुःखादि से अप्रीति करना और अनिच्छित के प्रति द्वेष भावना रखना।
११) प्रयत्न = पुरुषार्थ अर्थात् आत्मा और परमात्मा विषयक विवेकज्ञान प्राप्त करने के लिए प्रयत्न करना।
१२) ज्ञानम् - ज्ञान प्राप्त करने लिए प्रयास करना और उसे अर्जित करना ताकि जीवन आनन्दमय हो।

इस प्रकार आत्मा की शक्ति जानकर अपने अन्दर के सद्गुणों का विकास करना।

उपर्युक्त आत्मा की परिभाषा जो सत् शास्त्रों से सम्मत है को समझने के पश्चात् हमें लक्ष्य की ओर बढने के लिए ऐसा उपाय चाहिए जो वेद के अनुकूल हो।

वेद भगवान् हमें जीवन जीने का उपदेश देते है-

* * * * *

राष्ट्र-धर्म

(१)

धर्म क्या हैं?

गुरुकुल विश्वविद्यालय (काँगड़ी) के महाविद्यालय-विभाग की तीसरी कक्षा की घटना है। वैदिक-साहित्य की पढ़ाई का समय था। गुरुजी शतपथ ब्राह्मण में से गोमेध-यज्ञ का प्रकरण पढ़ा रहे थे। उन्होंने अपने विचार के अनुसार गोमेध-यज्ञ की व्याख्या करते हुए बताया कि किस प्रकार गाय को स्तूप के साथ बाँधकर यज्ञ में उसकी बलि और आहुति दी जाय। गोमेध-यज्ञ की यह व्याख्या समाप्त होते न होते एक विद्यार्थी ने गुरुजी से कुछ शंका करने की इच्छा प्रगट की। गुरुजी ने प्रसन्नतापूर्वक शंका प्रगट करने की आज्ञा दी। विद्यार्थी ने विनीत-भाव से पूछा कि यदि गोमेध-यज्ञ की इस व्याख्या को ठीक मान लिया जाय तो मुसलमानों की ईद के दिन की (गाय की) कुर्बानी और हिन्दुओं के इस गोमेध-यज्ञ में क्या भेद है? गुरुजी ने लगभग एक घण्टे तक संस्कृत में व्याख्यान दिया और शंका का समाधान करने का यत्न किया। पर, शंका मिटी नहीं। गुरुजी इसपर इतने आवेश में आ गये कि उन्होंने विद्यार्थी को नास्तिक और शास्त्र पढ़ने के लिए अनधिकारी इत्यादि कहकर उस शङ्का को दबाना चाहा। परिणाम यह हुआ कि न केवल शंका करनेवाले विद्यार्थी, किन्तु सभी विद्यार्थियों की शतपथ ब्राह्मण पर से श्रद्धा उठ गई। विद्यार्थियों ने रुचि के साथ उसको पढ़ना छोड़ दिया।

काम आयें सर्वदा शुभकामनायें

– देव नारायण भारद्वाज

वह दिन का अन्तिम समय था। सब घर जाने को तैयार थे, तभी प्लान्ट में एक तकनीकी समस्या उत्पन्न हो गई और वह उसे दूर करने मे जुट गया। जब तक वह कार्य पूरा करता, तब तक अत्यधिक देर हो गई। दरवाजे सील हो चुके थे और लाईटें बुझा दी गयी थीं। बिना हवा और प्रकाश के पूरी रात आइस प्लान्ट में फँसे रहने के भय से उसका कब्रगाह बनना तय था। घंटे बीत गये, तभी उसने किसी को दरबाजा खोलते पाया। सिक्यूरिटी गार्ड टार्च लिये खड़ा था। उसने उसे बाहर निकलने में मदद की। उस व्यक्ति ने सिक्यूरिटी गार्ड से पूछा आपको कैसे पता चला कि मैं भीतर हूँ? गार्ड ने उत्तर दिया – सर इस प्लान्ट में ५० लोग कार्य करतेहैं, पर सिर्फ एक आप हैं जो सुबह मुझे हैलो और शाम को जाते समय बाय कहते हैं। आज सुबह आप ड्यूटी पर आए थे, पर शाम को बाहर नहीं निकले। इससे मुझे शंका हुई और मैं देखने चला आया। वह नहीं जानता था कि किसी को छोटी सी शुभ कामना का सम्मान देना कभी उसका जीवन भी बचायेगा। जब भी आप किसी से मिलें तो गर्म जोशी भरी मुस्कुराहट से उसका सम्मान करें। इससे आपको भी खुशी मिलेंगी और सामनेवाले व्यक्ति को भी। हमें नहीं पता, पर हो सकता है कि वह आपके जीवन में भी कोई चमत्कार दिखा दे।

महात्मा विदुर ने अपने इसी अनुभव को अधिकाधिक गहराई से यों व्यक्त किया है :-

चक्षुसा मनसा वाचा कर्मणायच चतुर्विधम।
प्रसादयति लोकं यस्तं लोकोऽनु नु प्रसीदति।। वि.नी.२.२५।।

अर्थात् राजा हो या प्रजा – कोई भी व्यक्ति दूसरों को प्रेममयी दृष्टि से, मानसिक हित चिन्त से, मधुरवाणी से और सहायता पूर्ण कर्म से – चार प्रकार से प्रसन्न करता है उसे दूसरे लोग भी प्रसन्न करते हैं।

शुभकामना को अंग्रेजी में गुड विशेष या सदेच्छा कहते हैं। इसके व्यवहार से हम जैसी इच्छा (कामना) दूसरे के लिए करते है। वैसी ही वह हमारे लिए करता है। विशेषज्ञ कहते हैं कि जब आप सम्बन्धों को लोगों के प्रति कुछ शब्द कहकर ही नहीं, प्रत्युत दायित्व समझकर उनकेप्रति कृतज्ञता का भाव रखते हैं, उनसे सहयोग करते हैं, उनसे मधुरता का व्यवहार करते हैं, तो उस समय आपके आस-पास के वातावरण में सकारात्मक संदेशों का संचार होता है। आपने इस बात पर ध्यान देंने का यत्न किया कि कब कब आपको क्षणिक ही सही मुस्कराने-हँसने या गुनगुनाने का अवसर दिया, तो तब न सही अब अवश्य उनके लिये आप कह उठेंगे – धन्यवाद ! यह प्रवृत्ति आपके लिए मानसिक-शारीरिक भावनात्मक सुरक्षा के उपहार सिद्ध होंगी।

मनुहार की पारस्परिकता पर वैदिक ऋषियों ने अनवरत बल दिया है। अथर्ववेद (का० १९ सूक्त ५२ मन्त्र ४१) द्वारा हमाको सुन्दर सटीक सामयिक मार्गदर्शन सहज ही सुलभ होता है :-

कामेन मा काम आगन् हृदयाद्धृदयं परि।
यदमीषा मदी मनस्तदैतूप मामहि।।

अर्थात् – कामना से कामना उत्पन्न होती है। यह एक हृदय से दूसरे हृदय के प्रति हुआ करती है। दूसरा व्यक्ति मुझे चाहता है तो मैं भी उसे चाहने लगता हूँ। उसकी कामना ने मुझ में भी कामना को उत्पन्न किया है। वस्तुतः अनुराग पारस्परिक ही हुआ करता है। जो विद्वान-मनीषी-ज्ञानी जन हैं, उनका मन हमसे दूर न जाने पायें। वे भले किसी परिस्थितिवश हम से दूर हों, किन्तु उनका मन हमसें मिला रहे। शिक्षण संस्थान- गुरूकुल के आचार्य सदैव अपने शिष्य के साथ नहीं रह सकते। विद्यार्थी गण तो समावर्तन के बाद गृहस्थ के कर्त्तव्यों का पालन करने हेतु दूर-दूर बिखर जायेंगे, किन्तु शिष्यगण अपने आचार्य के मन से जुड़े रहेंगे, तो उनकी यही दीक्षा जीवन-उपलब्धियों की

दक्षता में परिलक्षित होती दिखाई देगी। मन की कामनाओं का पारस्परिक संचरण आचार्य-शिष्य तक ही सीमित न होकर संसार कीअनेकशः भूमिकाओं मे घटित होता है। पिता-पुत्र, माता-पुत्र, पुत्री, मित्र-मित्र, राजा-प्रजा, पति-पत्नी आदि अनेक क्षेत्रों मे प्रभावी होता है।

इस कामना का पारस्परिक विनिमय मनोकामना के रुप में आन्तरिक होना चाहिये, केवल बाहरी कृत्रिम नहीं होना चाहिये, अन्यथा दुर्घटना घटित हो सकती है। आख्यान है कि रात्रि के घोर अन्धकार में कई चोर चोरी करने के लिए जा रहे थे। सामने से आते दिखाई दिए-सन्त तुलसीदास। चोरों ने समझा-अपशकुन हो गया। पकड़े जा सकते हैं। चोर ने पूँछा ? तुम कौन हो ? तुलसीदास ने उत्तर दिया - जो तुम हो- सो मैं हूँ। चोरों ने राहत की श्वास ली। तो, चलो हमारे साथ, तुलसीदास चल दिये। चोरों ने एक मकान की दीवार को खोदकर नकव लगाया। तुलसीदास को बाहर खड़े रहकर उनको यह काम सौंपा - कोई दिखाई दे, तो अन्दर मिट्टी फेंक देना। हम लोग भाग खड़े होगे। चोरों ने भीतर जाकर सामान समेटा - तभी तुलसीदास ने भीतर की ओर मिट्टी फेंकना आरम्भ कर दिया। सभी चोर सामान छोड़कर बाहर निकलकर भागे और तुलसीदास से पूँछा ? कौन दिखाई दिया-बता और तुलसीदास ने कहा - ईश्वर सर्वत्र विद्यमान है, वही दिखाई दिया। मैंने आप सबको सचेत कर दिया। सन्त तुलसीदास का उद्देश्य था। अपने हृदय की भावना को चोरों के हृदयों तक सम्प्रेषित करना। चोर इसे ग्रहण कर लेते हैं तो चोर नहीं रहेंगे सन्त बन जायेंगे - यह हृदय से हृदय तक कामना शुभकामना का सम्प्रषण हो जायेगा।

संसार को संचालित करने के लिए जब युवा दम्पती विवाह बन्धन मे आबद्ध होंते हैं, तब सभी प्रक्रियाओं को पूर्ण करने के बाद - आशीर्वाद वाचन से पूर्व उन दोनों को परस्पर हृदय-स्पर्श कराया जाता है, इसे हृदय परिवर्तन भी कह देते हैं - ममव्रत ते हृदय दधामि मम चित्तमनु चित्तं ते अस्तु। इसका रहस्य एक ८८ वर्षीय बुजुर्ग ने अपने पोते को उस दिन समझाया - जब वह अपनी नववधू के साथ ऊँची आवाज मे गुस्से के साथ बात कर रहा था। उस वृद्ध ने बताया कि क्रोध की आवाज कठोर - कर्कश व ऊँची होती है, जब कि प्यार के सुर मधुर-शान्त व मन्द होते हैं, क्योंकि दोनों हृदय के निकट होते है, जब कि क्रोधावेश मे अनेक हृदय की दूरी बढ़ती ही चली जाती है। विवाह संस्कार के हृदय-स्पर्श की भूमिका सन्तान-परिवार-समाज की सफलता की प्रवेशिका होती है। इतने पर भी संसार-सागर को तरने के लिये बहुत सावधानी की आवश्यकता होती है। सन्त तुलसीदास ने महाबली रावण की नम्रता का वर्णन अपनी सहायता व स्थार्थ पूर्ति के लिए द्द्मवेशी मारीचि से यों किया है :-

नवनिनीच कै अति दुखदाई। जिमि अंकुस धनु उरग बिलाई।।
मयदायक खल की प्रियवानी। जिमि अकाल के कुसुम भवानी।।

नीच का झुकना (नम्र होना) भी अत्यन्त दुःखदाई होता है, जैसे अंकुश, धनुष साँप और बिल्ली झुकते हैं, तो मनुष्य की घोर हानि करते हैं। दुष्ट व्यक्ति की मीठी वाणी भी उसी प्रकार भयदायक होती है, जैसे बिना ऋतु के फूल होते हैं। उदाहरणतः महानगर के प्रमुख मार्ग पर एक सेवानिवृत्त उच्चाधिकारी अपनी पत्नी के साथ जा रहे थे। स्कूटर पर दो युवक आये और नम्रता पूर्वक उनके चरण स्पर्श किये। उनका काम पूँछा और एक उस काम के लिए उच्चाधिकारी को स्कूटर पर बैठाकर आगे ले गया, पीछे दूसरे ने उनकी पत्नी के आभूषण उतरवा लिए और दोनो रफूचक्कर हो गये। वेद विद्या में निष्णात युवाजब शासक-प्रशासक बनते हैं तो वे मनोविज्ञान में दक्ष होतेहैं। राजा के दरबार में राजधानी के संभ्रान्त नागरिक उपस्थित हुआ करते थे। कुछ दिन से एक नया व्यक्ति आकर्षक साज सज्जा के साथ आने लगा। राजा उसको देखकर असहज अनुभव करता, वह बिल्कुल उसको पसन्द नहीं करता। राजा ने मन्त्र से परामर्श किया। उसने गुप्तचरों द्वारा खोज करायी, तो पता चला कि वह चन्दन का बड़ा व्यापारी है और उसने चन्दन का अत्यधिक भण्डारण कर रक्खा हैं, वह चाहता है कि इसकी विक्री हो जाये, तो उसके पास प्रभूत धन राशि आ जाये। व्यापारी मन ही मन सोंचता था कि राजा की मृत्यु हो तो उसकी अन्त्येष्टि में चन्दन का प्रयोग हो जायेगा और

वह धन से मालामाल हो जायेगा।

मन्त्री ने गुप्त आख्या से राजा को अवगत कराये बिना ही राष्ट्रभृत महामयज्ञ की योजना बना दी। राजधानी यज्ञधूम से काम उठी। राजा-प्रजा-आचार्य सभी हर्षविभोर हो गये। उस व्यापारी का सारा चन्दन-भण्डार महायज्ञ में उपयोग हो गया। उसको मनवांछित धन-लाभ हो गया। वह व्यापारी राजा-दरबार में यथापूर्व भाग लेता रहा। यज्ञादि जनकल्याण कार्य कराये जाने से प्रसन्न होकर वह मन ही मन राजा के प्रति भरपूर शुभकामनायें करने लगा। अभी तक मन्त्री ने अपनी आख्या राजा को नहीं बतायी थी। राजा ने स्वयं ही अपने आन्तरिक भाव परिवर्तन की भूमिका मन्त्री को बतलानी शुरू कर दी - जिसका सार यह था कि वह व्यापारी मुझे बुरा नही अपितु अच्छा लगने लगा है। लोकोक्ति दिल से दिल को राहत चरितार्थ हो गई। अब मन्त्री ने भी अपनी गुप्त अन्वेषण एवं राष्ट्रभृत यज्ञ की योजना का राजा के समक्ष रहस्योदघाटन कर दिया।

ऋग्वेद के असीम क्षीरसागर मे से उभरती है उसकी नवनीत तुल्य अन्तिम ऋचा जो राष्ट्र-परिवार में सम-संकल्प बद्धता कस न्देश देती है :-

समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सु सहासीत।।ऋ०१०.१९१.४।।
हों सभी के सम हृदय संकल्प अविरोधी सदा।
मनभरे हों प्रेम से जिससे बढ़े सुख सम्पदा।।

अपने शिक्षण संस्थान में आचार्य गण इस ऋचा का पाठ या अर्थ गायन ही नहीं इसका व्यावहारिक अभ्यास भी कराते रहे हैं, जो मुनि सनत्कुमार के गुरूकुल मे आयोजित दीक्षान्त समारोह के द्रश्यदर्शन से स्पष्ट झलकताप्रतीत होता है। बृहत समाभवन के बड़े मंच पर एक और आचार्य गण व दूसरी ओर राज्याधिकारी गण विराजमान थे। इन दोनों के मध्य स्थित उच्चासन पर गुरूकुल पति मुनि सनत्कुमार व राज्य अधिपति (सम्राट) विराज रहे थे। सामने के मैदान में सभी वे ब्रह्मचारी बैठे थे, जिन्हें दीक्षान्त (समावर्तन) के फलस्वरूप आगामी कार्यक्षेत्र के लिए अपने घर प्रस्थान करना था। मुनि सनत्कुमार ने ब्रह्मचारियों को सम्बोधित करते हुए कहा - अब तक शिक्षण काल में आप लोगों से बहुत प्रश्नोत्तर हुए हैं। आज आपसे अन्तिम प्रश्न करते हैं। बताइए - जीवन में आगे क्या बनना चाहते हैं - अधिपति या बृहस्पति? सभी का एक स्वर से सामाूहिक उत्तर था - बृहस्पतिः बृहस्पतिः बृहस्पति। उत्तर सुनकर सम्राट महोच्चार कर उठे - मुनि महाराज की जयः जयः जयः। समान संकल्प व हृदय वालेइन्हीं युवकों में से राजकाज के लिए चुने गये युवक ही कह सकेंगे - वयं राष्ट्रे जागृयाम पुरोहिताः (यजु०९.२३)। यथा अधिपति तथा प्रजा-मति अर्थात यथा राजा तथा प्रजा के अनुसार राष्ट्र में सब सबके लिए शुभकामना करने वाले होगे, तो सार्थक हो उठेगा - श्रुति-संकल्प जयं स्याम पतयोरयीषाम् (ऋ०१०.१२१.१०) अर्थात् सभी राष्ट्र नाबरक यथायोग्य घनैश्वर्यों के स्वामी होंगे।

नयन मुस्कायें - अचर उत्सव मनायें।
काम आयें सर्वदा शुभकामनायें।।

वरेण्यम् अवन्तिका (प्रथम) रामघाट मार्ग, अलीगढ़-२०२००१ (उ.प्र.)

*****

जिस मरने से जग डरे मेरे मन आनन्द।
मर कर ही पाइये पूरण परमानन्द।।

कुछ तड़प-कुछ झड़प

– प्रा. राजेन्द्र जिज्ञासु

तो फिर ईश्वर को क्या कहोगे?- दिल्ली से दयानन्द मठ दीनानगर के एक स्नातक श्री रामचन्द्र जी शास्त्री ने चलभाष पर कुछ प्रश्नों के उत्तर जानने चाहे। उनका पहला प्रश्न बहुत महत्त्वपूर्ण था। इस समय इस प्रश्न पर तड़प-झड़प में कुछ लिखने का इस वीनत का विचार बन रहा था। रामचन्द्र जी ने तो इस लेखक के मन की बात चितचोर बनकर चुरा ली। आर्यसमाज में भी कई भाई किसी विद्वान्, वक्ता, प्रवक्ता, नेता और संन्यासी को परम आदरणीय या परमपूज्य कहते व लिख देते हैं। रामचन्द्र जी ने प्रश्न उठाया है- क्या किसी व्यक्ति को, महापुरुष को परमपूज्य अथवा परम आदरणीय बताना या कहना वैदिक सिद्धान्तों के विरुद्ध नहीं है?

कुछ संस्थायें व पौराणिक मत-पन्थों के लोग अपने नेता, गुरु गद्दी पर आसीन व्यक्ति को परमपूज्य ही कहते व मानते हैं। वैदिक साहित्य में कहीं भी ईश्वरेतर को परमपूज्य नहीं माना गया। आधुनिक काल में वेदोद्धारक महर्षि दयानन्द जी के साहित्य में, व्याख्यानों में और आर्यसमाज के सम्पूर्ण सैद्धान्तिक साहित्य में हमारे किसी मूर्धन्य विद्वान., संन्यसी और साहित्यकार ने कहीं भी किसी महापुरुष को परमपूज्य नहीं लिखा है। पौराणिक वातावरण में किसी का अन्धानुकरण करके किसी को परमपूज्य बताना व मानना ईश्वर का अपमान है।

लाहौर में आर्यसमाज के कुछ लोगों ने महर्षि जी को आर्यसमाज का परम सहायक घोषित करना चाहा। ऋषिवर ने तत्काल इस योग की जड़ काटते हुये कहा, तो फिर ईश्वर को क्या मानोगे? क्या जानोगे? क्या कहोगे? एकेश्वरवादी आर्यों को इस पाखण्ड का सर्वत्र खण्डन करना चाहिये। ऐसे तो एक-एक करके सब पौराणिक अन्धविश्वास आर्यसमाज में घुस जायेंगे। हमने मुनिवर गुरुदत्त, महात्मा आर्यमुनि, स्वामी नित्यानन्द जी से लेकर स्वामी श्रद्धानन्द, महात्मा नारायण स्वामी, स्वामी स्वतन्त्रानछ जी तक कभी भी किसी को परमपूज्य न माना और न कहा। ऋषि मिशन से प्रमाण देकर शास्त्री जी का समाधान कर दिया। वह तृप्त हो गये।

दक्षिण भारत में एक समय श्री पं. नरेन्द जी जब हमारे मुकटविहीन सम्राट् थे तो हम उन्हें आर्य युवक हृदय सम्राट मानकर अपनी श्रद्धा व्यक्त किया करते थे, परन्तु परमपूज्य जेसे शब्द का प्रयोग करके हम नास्तिकता की चौखट तक कभी नहीं पहुँचे।

स्वामी श्रद्धानन्द संन्यास शताब्दी स्मारक- परोपकारी कई मास से स्वामी श्रद्धानन्द संन्यास शताब्दी का प्रचार कर रहा हे। अन्य-अन्य संगठन ऐसे महत्त्वपूर्ण पर्वों पर शताब्दी स्मारक खड़े करते हैं। न जाने आर्यसमाज को प्रमादरूपी सर्प ने यह क्या डस लिया है कि जलसे, जुलूसों, स्कूलों, संस्थाओं और महासम्मेलनों क रसिया आर्यों ने कहीं भी इस शताब्दी का कोई स्मारक खड़ा करने का उद्यम नहीं किया। यह जल्लाजनक नीति-रीति और व्यवहार है। हम फिर भी निराश नहीं। हरियाणा में महर्षि जी ने केवल रेवाड़ी क्षेत्र में दिल खोलकर समय देकर वेदामृत बरसाया था। ऋषि-चरणों को चूमने वाली उस धरती के एक नन्हे ग्राम देवनगर (चामधेड़ा) के उत्सव पर वहाँ के आर्यों ने स्वामी श्रद्धानन्द वैदिक पुस्तकालय की स्थापना करे आर्यसमाज क लाज रख ली है। हमें हर्ष है कि देवनगर के आर्यवीरों ने आर्यसमाज को प्रमादरूपी कलङ्क का टीका लगने से बचा लिया है।

इस पुस्तकालय को तुच्छ अथवा रस्मपूर्ति न माना जाये, इसमें ऐसे-ऐसे दस्तावेज़ हैं जो अन्यत्र किसी भी पुस्तकालय में नहीं हैं। इसी अवसर पर हम भी प्रेमपूर्वक इस शताब्दी स्मारक को २०-२५ और ऐसे दस्तावेज़ भेंट करेंगे, जो किसी भी पुस्तकालय में नहीं मिलेंगे।

आर्य मात्र के लिये एक शुभ समाचार- जब हम दक्षिण की यात्रा पर थे तो दो-तीन बार बठिण्डा से हमारे कृपालु ऋषिभक्त श्री जितेन्द्रकुमार जी गुप्त ने चलभाष पर पूछा, क्या कोई नई सामग्री, नये स्त्रोत कहीं से मिले? एक

नया ठोस ग्रन्थऔर प्रकाशित करें। उन्हें हर बार कहा, कुछ तो कहीं से मिलेगा। खाली हाथ नहीं लौटूँगा। आप मिलेंगे तो जान जायेंगे।

दक्षिण के आर्यवीरों को एक वर्ष पूर्व यह वचन दिया था कि स्वामी श्रद्धानन्द जी पर एक खोजपूर्ण बृहद् ग्रन्थ लिखकर फिर आपकी आज्ञा का पालन किया जायेगा। हैदराबाद से ट्रेन चलने तक वह अपनी माँग को पूरा करने के लिये प्रेरणा देते रहे। अपनी उत्कट इच्छा की पूर्ति के लिये परमोत्साही आर्यवीर राहुल से भी दबाव डलवाया।

आर्य जाति के एक-एक सेवक को यह आनन्ददायक समाचार पाकर गौरव होगा कि दक्षि से लौटने तक हमारेहाथ कुछ ऐसे स्त्रोत लग गये जिनकी जानकारी सम्भव है पं. नरेन्द्र जी को कुछ हो तो हो। सारे आर्यजगत् में और कोई नहीं जानता कि जो-जो आर्यसमाज विषयक गौरवूपर्ण तथ्य (हमारे हाथ लगे) स्त्रोतों मेंहमने पाये हैं। दस दिन तक दक्षिण में आर्यसमाजोदय तथा हैदराबाद का मुक्ति संग्राम विषय पर सर्वथा दुर्लभ स्त्रोतों के प्रमाणों से परिपूर्ण पुस्तक का लेखन आरम्भहो जायेगा।

इतिहास बोल रहा है और बोलेगा- लेखक की अपनी विषय की पहली और अनूठी पुस्तक इतिहास बोल पड़ इस लेख के छपने तक छप चुकी होगी। ऋषि मेला पर इसका विमोचन होगा। इसकी सामग्री, इसमें आर्यसमाज और ऋषि दयानन्द विषयक महत्त्वपूर्ण जानकारियों का पहली बार ही अनावरण हो रहा है। किसी भी इतिहासकार को, ऋषि जीवन के किसी भी लेखक को जिन घटनाओं का आज तक ज्ञान नहीं था, वे इस पुस्तक में मिलेंगे। श्री राहुल आर्य तथा उनके युवा आर्यमित्रों के अथक पुरुषार्थ व सहयोग के लिये धन्यवाद का शब्द बहुत छोटा है। हमारे मनोभाव असीम हैं। आर्य-जाति तथा इतिहासकारों का कृतज्ञ हृदय हमारे परिश्रम व सेवा का मूल्याङ्कन करेगा।

हम यहीं रुकने वाले नहीं हैं। कभी कारागार में लिखे गये अपने ही एक गीत की यह पंक्ति हम गुनगुना लेते हैं-

हम रुकना झुकना क्या जानें

जो परियोजनायें चल रही हैं उनके साथ-साथ ऋषि जीवन पर हमारी अगली पुस्तक, इतिहास बोल रहा है का लेखन भी आरम्भ हो जायेगा।

इसे आप इतिहास बोल पड़ा का दूसरा भाग समझिये। यह स्वर्गीय डॉ. धर्मवीर जी को समर्पित होगी। इसमें क्या होगा?

राहुल जी ने कहा, कुछ नया काम बतायें। क्या चाहिये? उन्हें ऋषि जी के जीवनकाल के एक अंग्रेजी पत्र के कुछ अंक खोजने का कार्य सौंपा। इनके मिलने से महर्षि के जीवन संघर्ष तथा यात्राओं की तिथियों की सुनिश्चित जानकारी हो जायेगी। इससे कई गुत्थियाँ सुलझ जायेंगी। अपनी तो यह चाहना है कि जीवन की साँझ में ऋषि-जीवन का यह कार्य पूरा हो जाये तो यह बहुत बड़ी उपलब्धि होगी। इससे मन को बड़ा सन्तोष होगा।

यह तो सोचा नहीं था कि राहुल जी हनुमान बनकर स्त्रोतों का पर्वत ही उठा लायेंगे। आर्यो! आपको आर्यसमाज के सपूत पर अभिमान होगा कि उसे ऋषि जीवन का कार्य सौंपा था, वह महात्मा नारायण स्वामीजी, स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी, स्वामी श्रद्धानन्द जी, ला. लाजपतराय जी, प्राणवीर पं. लेखराम जी पर ऐसे-ऐसे स्त्रोत खोज लाया है, जिनकी हमने कल्पना तक नहीं की थी।

राहुल के पिता जी दक्षिण की यात्रा पर हमारे लिये भोजन आदि का बहुत सामान लेकर आये। आपने भावभरित हृदय से कहा, हमने अपना इकलौता पुत्र ऋषि मिशन केलिये-समाज के लिये आपको सौंप दिया। आर्यसमाज के लिये वह जो कुछ कर रहा है-उससे हमारा जन्म और जीवन सफल हो रहा है। हमारी घर-गृहस्थी, कामधन्धा प्रभुकृपा से ठीक चल रहा है। आज के सत्ता व सम्पत्ति-पूजा के युग में कोई पिता इतनी ऊँची सोच रखता हो तो यह देश व समाज के लिये गौरव का विषय है। आज समाजों की सम्पत्तियाँ हड़पने वालों की कमी नहीं। निष्काम

सेवकों का और विश्वस्त सहयोगियों का सर्वत्र दुष्काल है। ऐसी स्थिति में राहुल जी ओर उस जैसे कर्मवीर युवकों की टोली को जीवन के इस मोड़ पर पाकर लेखकर अपने प्रारब्ध पर क्यों न इतराए? कौन जानता था कि सन् १९००ई. में अंग्रेजी साम्राज्य ने आयसमाज से भयभीत होकर इंग्लैण्ड में यह समुद्री तार भेजा था, "Revolit in India feared" भारत में भीषण विद्रोह की आशङ्का है। सरकार ने आर्यसमाज को उभरते ही कुचलने का मन बना लिया था।

यह सरकार का गुप्त दस्तावेज राहुल ने ही खोज निकाला। जितना कार्य राहुल जी सौंपा जाता है, उसका एक चौथाई भी हो जाये तो यह बहुत बड़ी बात है, परन्तु यहाँ तो हर बार यह देखा गया है कि उसे जितना कार्य सौंपा जाता है, वह उससे कहीं अधिक करके हमें चकित कर देता है। न जाने माता-पिता ने उसे क्या जन्मघुट्टी पिला कर बड़ा किया है। इतिहास बोल पड़ा तो आर्य जनता के हाथों में पहुंचने ही वाला है। अब आबाल वृद्ध इतिहास बोल रहा है की प्रतीक्षा करें।

डॉ. सुमित्रा जी की ऊहा और श्रम- श्री पं. सुधाकर जी की पौत्री डॉ. सुमित्रा जी तीस वर्ष तक देहरादून रही हैं। अंग्रेजी, कन्नड़ आदि के अतिरिक्त हिन्दी पर भी उनका पूरा-पूरा अधिकार है। बैंगलोर पहुँचते ही डॉ. राधाकृष्णन् जी ने यह जानकारी दी कि आपकी पुस्तक कर्नाटक आर्यसमाज का इतिहास, जो कई वर्ष से छिपा पड़ा था, अब उसका कन्नड़ अनुवाद शीघ्र छपेगा। यह भी बताया कि डॉ. सुमित्रा जी ने इस पर गहन खोज करके बहुत कार्य किया है। डॉ. राधाकृष्णन् जी की बात हम पूरी-पूरी समझ न पाये कि पाण्डुलिपि पर डॉ. सुमित्रा जी ने क्या कार्य किया है।

जब श्रद्धेय पं. सुधाकर जी से मिलने गये तो डॉ. सुमित्रा ने अंग्रेजी में टाइप की हुई एक फाइल हमारे आगे रख दी। एक दृष्टि डाली तो हमें यह देखकर प्रसन्नता हुई कि हमने कर्नाटक आर्यसमाज के इहिास में जो कई प्रेरक प्रसंग व घटनायें दी थीं-डॉ. सुमित्रा जी की यह पुस्तिका उसकी पुष्टि करती है। हमने चौंककर उनसे पूछा, आपको यह जानकारी किस स्त्रोत से, कहाँ से प्राप्त हुई?

आपने कहा, यह सारा कार्य आप ही की पुस्तक पर किया है। अब कुछ ध्यान से देखा तो पता चला कि आपने पुस्तक में वर्णित एक-एक व्यक्ति के बारे में कन्नड़ साहित्य, कर्नाटक विषयक अंग्रेजी पुस्तकों व पत्र-पत्रिकाओं से पूरक जानकारी प्राप्त करके यह निष्कर्ष निकाला कि जो कुछ हमने लिखा है वह सब प्रामाणिक हे। आपने हमारी पुस्तक में वर्णित तत्कालीन सब कन्नड़ ऋषि-भक्तों व वेद-भक्तों के फोटो भी खोज निकाले। उनकी ऊहा और श्रम का क्या कहना। पुस्तकों का ढेर हमारे सामने रख दिया। सबने यह माना कि डॉ. समित्रा ने तो इस पाण्डुलिपि पर कार्य क्या किया, पीएच.डी. का शोध-प्रबन्ध तैयार कर दिया। आर्यसमाज कर्नाटक क्या भारतभर का आर्यसमाज आपके अथक श्रम से धन्य-धन्य होग गया है।

आर्य युवकों का विश्वव्यापी तालमेल- कभी महाशय कृष्ण जी ने लिखा था आर्यसमाज की चक्की चलतीतो धीरे-धीरे है, परन्तु पीसती बारीक है। विघटन व पदलोलुपता के इस युग में पं. लेखराम वैदिक मिशन के सिद्धान्तनिष्ठ आर्यवीरों ने महाशय जी के इस कथन को सत्य कर दिखाया है। इस समय युवकों के नाम पर आर्यसमाज में कई संगठन हैं। सबके फोटो छपते रहते हैं। कभी लेखराम वैदिक मिशन का फोटो किसी न कहीं किसी पत्र में छपा देखा? हमने तो प्रेरणा देकर ऊँची योग्यता के इन युवकों को पं. गंगाप्रसाद उपाध्याय और पं. नरेन्द्र के मार्ग पर चला दिया। भारत सरकार द्वारा निज़ाम उस्मान को महिमामण्डित करने वाली पुस्तक का आर्यसमाज को पता तक न चला। हमने इसकी पोल खोलने व देशद्रोहपूर्ण कुकृत्यों को उजागर करके कुछ लिखने की ठानी तो ये युवक हमारे साथ खड़े हो गये।

अभी दिल्ली से एक युवा आर्य मिशनरी ने श्रद्धाराम फिल्लौरी पर कई महत्त्वपूर्ण प्रश्न पूछे। हमने कहा इतिहास की साक्षी पुस्तक में उत्तर पढ़ लें। उन्होंने उसमें वर्णित दस्तावेजों के प्रमाणों के विषय में पूछा, यह कहाँ से मिले? अमेरिका में कार्यरत महाराष्ट्र का आर्यवीर हमारे आर्यवीरों की टोली से जुड़कर ऋषि मिशन की सेवा तथा उपलब्धियों

का नया इतिहास रच रहा है। समय आयेगा, सब जान जायेंगे। फोटो मार्का संगठन ऐसा एक भी व्यक्ति मैदान में न उतार सके। हम सत्ता व सम्पत्ति की ऐंठ वालों के आश्ति नहीं। हम प्रभु–आश्रित हैं। हमारा आधार तो पवित्र वेदवाणी है।

राज ठाकरे ने ठीक ही कहा– श्री राज ठाकरे का यह कथन पूरा सत्य है कि जब तक कांग्रेस राहुल गांधी के हाथ में है मोदी को चिन्ता करने की कोई आवश्यकता नहीं, ठीक इसी प्रकार हिन्दुओं में जाति–पाँति व जातिवाद को संरक्षण देने वाले संगठन व दल जब तक हैं, इस्लाम व ईसाई मत के विस्तार को कोई कानून नहीं रोक सकता। लव जिहाद को रोकने व घर वापसी के विषय में लीडरों व बाबा के भाषण हमने पढ़–सुन लिये। जब तक जाति–पाति मिटाने का अभियान नहीं छेड़ा जाता, कुछ भी हाथ लगने वाला नहीं। मूर्तिपूजा तथा जातिवाद मिटाने के लिये सिर–धड़ की बाजी लगाने की आर्यसमाज में क्या हिम्मत है? अग्निवेश के होते इस्लाम के विस्तार की क्या चिन्ता?

*****

आज लगाओ नारा

– **विद्यासागर शास्त्री,** सुराज कॉलनी, प्लॉट नं. ४०

देश स्वतन्त्र हुआ है किन्तु हिन्दी पड़ी थी कारा।
लो मुक्त हुई है हिन्दी माता आजलगाओ नारा।।
शतशः कण्ठों से निकली थी इन्छहीं स्वरों की धारा।
हिन्दी भाषा अमर रहे ये आज लगाओ नारा।।
जिसकी मंगल मनोकामना करते पुष्प चढ़ाते।
महावीर, जयशंकर ने था अपना जीवन वारा।।
लो मुक्त हुई है हिन्दी माता आज लगाओ नारा।।
कविकुल ने निज शक्ति लगाकर काव्य वाटिकासींची
पर ! अपनों ही वर्षों तक थी इसकी गरदन भींची।।
जो सुरभित करती सदा सर्वदा जीवन वृक्ष हमारा।
लो मुक्त हुई है हिन्दी माता आज लगाओ नारा।।
भारत के आंगन में मादक बसन्त फिर से आया।
साढे सत्रह वर्षों से जिसकी कारा में कृश काया।।
स्वागत हेतु आज हिन्दी के उसने देश निहारा।
लो मुक्त हुई है हिन्दी माता आज लगाओ नारा।।
महाप्रतापी दयानन्द की सहर्ष विजय मनाओ।
हुई साधना हिन्दुजनों की यह सफल सुनाओं।।
हिन्दी प्रेमियों। दिवस मनाकर बुलन्द करो नकारा।
लो मुक्त हुई है हिन्दी माता आज लगाओ नारा।।

सदा देवा ! पुरूषाः सत्यं वदेयुः।
सदा वेद मार्गं विशुद्धं चरे युः।।
सदा देव देवं महेशं भजेयुः।
जनाः मोक्षलाभेन धन्याः भवेयुः।।

अमृतमश्नुते

यजुर्वेद अध्याय ४० परा एवं अपार विद्या का भण्डार है। हममें से हर व्यक्ति अमृतत्व को प्राप्त करना चाहता है। यह अमृतत्व कैसे प्राप्त होगा-यह अध्याय में बताया गया है। अमृतत्व को प्राप्त करने के लिए हमें ज्ञान-कर्म और उपासना के समुच्चय को समझकर उसका उचित ढंग से उपयोग करना होता है। इस अध्याय के प्रथम दो मन्त्र ज्ञान और कर्म के विषय में ही उल्लिखित हैं।

ओ३म् ईशावास्यमिदँ सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधःकस्य स्विद्धनम्।

-यजुर्वेद ४०.१

अन्वयार्थ-(जगत्याम्) इस विश्व ब्रम्हाण्ड में (यत् किञ्च) जो कुछ भी (जगत्) परिवर्तनशील है, (इदम्) इन (सर्वं) सबको (ईशा) परमात्मा के द्वारा (वास्यम्) आच्छादित कर देना चाहिए। (तेन) इस (त्यक्तेन) त्याग के द्वारा (अपना) (भुञ्जीथाः) पालन-पोषण करना चाहिए। (कास्य स्वित्) किसी के भी (धनम्) धन का (मा गृधः) लालच मत करो।

भावार्थ- इस जगत् में (चर-अचर) जो कुछ भी परिवर्तनशील है, सबको ईश्वर से आच्छादित कर लेना चाहिए। इस त्याग के द्वारा अपना पालन करना चाहिए। किसी के भी धन का लोभ नहीं करना चाहिए।

कर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतँसमाः।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे।।

-यजुर्वेद ४०.२

पदार्थ-(इ ह) यहाँ (इस लोक या शरीर में) (कर्माणि) कर्मो को (कुर्वन्) करते हुए (एव) ही (शतम्) सौ (समाः) वर्षो तक (जिजीविषेत्) जीवित रहने की इच्छा करनी चाहिए। (एवम्) ऐसे (त्वायि) तुम (नरे) मनुष्य के लिए (इतः) इसे छोड़ (अन्यथा) दूसरा मार्ग (विकल्प) (न) नहीं (अस्ति) हैं (येन) जिससे (कर्म) कर्म (के दोष) (न लिप्यते) लिप्त न हों।

भावार्थं-जगत् में शास्त्र-विहित कर्म करते हुए ही सौ वर्ष तक जीवित रहने की इच्छा करनी चाहिए। मनुष्य के लिए कर्मों में अलिप्त रहने का इसके अतिरिक्त अन्य कोई मार्ग नही हैं। (शंकर भाष्य का अनुवाद)

वास्तव में पहले मन्त्र में बताया गया है की संसार में जो कुछ भी चर-अचर पदार्थ हैं, उन सबको ईश्वर से आच्छादित कर लेना चाहिए। वास्तव में यह जो मुण्डकोपनिषद्, बृहदारण्यक आदि में पूर्व में ही बता दिया गया हैं कि जगत् की उत्पत्ति के बाद जगत्कर्त्ता ब्रह्य उसमें अनुप्रवेश कर गया। इससे उसके दो रुप हो गए। एक सत् रुप यह सृष्टी से स और त्यत् रुपी उच्छिष्ट भाग से त्य लेने से ही सत्य बनता है। केवल इस सृष्टि को जान लेने से ही सत्य को नहीं जाना जा सकता। इसी प्रकार ब्रह्य के केवल त्यत् रुप को जान लेने से भी सम्पूर्ण सत्य का बोध नहीं हो सकता। सत्य का पूर्ण ज्ञान तो सत् रुप सृष्टि और त्यत् रुपी ब्रह्य के सृष्टि से अलग हिस्से को जान लेने पर ही होता है। दूसरी बात त्यागपूर्वक भोग की कही है, फिर कहा गया है कि किसी के धन का लोभ मत कर। धन किसी का होकर नहीं रहता है।

दूसरे मन्त्र में कर्म करते हूए सौ वर्ष तक जीवित रहने की कामना की गईं हैं। स्वामी शंकराचार्य प्रथम मन्त्र को संन्यासियों के लिए तथा दूसरा मन्त्र अज्ञानियों, अविद्या में ग्रस्त लोगों के लिए मानते हैं, परन्तु मन्त्रों मे ऐसा कोई संकेत नहीं है। ज्ञान और कर्म एक-दूसरे के पूरक हैं, विरोधी नहीं है। स्वामी शंकराचार्य ज्ञान और कर्म में पर्वत जैसा विरोध मानते हैं, परन्तु वास्तव में ऐसा है नहीं। स्वामी जी ने भी ज्ञान कठिन कर्म करके ही प्राप्त किया था। फिर उस

ज्ञान का उपयोग देश भर में घूम-घूम कर वैदिक-धर्म के प्रचार में किया था। ग्राम-ग्राम घूमना और शास्त्र-चर्चा करना कर्म ही तो है। फिर ईशावास्योपनिषद् के अगले श्लोक ९ से १४ तक के मन्त्रों में वे ज्ञान और कर्म के समुच्चय की बात भी करते हैं। अस्तु। अब हम देखेंगे कि ज्ञान और कर्म के समुच्चय से अमृतत्व कैसे प्राप्त किया जाता है।

यजुर्वेद के ४० वें अध्याय के ९, १० व ११ मन्त्र असम्भूति और सम्भूति के विषय में है। यही मन्त्र उपनिषद् में १२, १३ व १४ वें श्लोक के रुप में हैं।

अन्धन्तमः प्र विशन्ति येऽसम्भूतिमुपासते।
ततोभूयऽइव ते तमो यऽउ सम्भूत्यां रताः।।

– यजुर्वेद ४०.९

पदार्थ– (ये) जो लोग (असम्भूति) अव्यक्त प्रकृति या कारणरुप प्रकृति की (उपासते) उपासना करते हैं (ते) वे (अन्धम् तमः) न दिखने वाले अन्धकारमय लोक में (प्रविशन्ति) प्रवेश करते हैं। और (ये) जो (उ) लोग (सम्भूत्याम्) कार्यरुप प्रकृति, कार्य बह्य (की उपासना में) (रताः) लगे रहते हैं (ते) वे (उ) वितर्क के साथ (तत्) उस से भी (भूयः) बढ़कर (इव) ही (तमः) अन्धकार में (प्रविशान्ति) प्रवेश करते हैं।

भावार्थ– जो लोक अव्यक्त प्रकृति की उपासना करते हैं वे घोर अन्धकार में प्रवेश करते हैं और जो लोग व्यक्त की उपासना करते हैं वे उससे भी गहरे अन्धकार में जाते हैं।

अन्यदेवाहुः सम्भवादन्यदाहुरसम्भवात् ।
इति शुश्रुम धीराणां से नस्तद्विचचक्षिरे।। यजु. ४०.१०

अन्वयार्थ– (सम्भवात्) प्रकृति या कार्यरुप सृष्टि या कार्य ब्रह्म की उपासना का (अन्यत्) भिन्न (फलम्) फल (आहः) कहते हैं। (असम्भवात्) अव्यक्त प्रकृति (या कारण ब्रह्म) की उपासना का (अन्यत्) भिन्न (एव)ही (आहुः) कहा गया है (इति) ऐसा हमने (धीराणाम्) ज्ञानी लोगों से (शुश्रुम) सुना है। (ये) जिन्होंने (नः) हमारे लिए (तत्) इसकी (विचचक्षिरे) व्याख्या की थी।

यहाँ स्वामी शंकराचार्य कारण प्रकृति या अव्यक्त प्रकृति को कारण ब्रह्म और कार्य प्रकृति अर्थात व्यक्त प्रकृति या सृष्टि को कार्य ब्रह्म का नाम देते हैं, क्योंकि वे ब्रह्म के अतिरिक्त किसी की सत्ता स्वीकार नहीं करतें हैं, परन्तु अव्यक्त और व्यक्त प्रकृति का नाम भी लेते हैं।

अगले मन्त्र मे असम्भूति और सम्भूति को पूरक रुप में ही दिखाया है।

सम्भूतिं च विनाशं च यस्तद्वेदोभयँसह।
विनाशेन मृत्युं तीर्त्वा सम्भूत्यामृतमश्नुते।।

–यजु. ४०.११

अन्वायार्थ– (यः) जो व्यक्ति (असम्भूतिम्) अव्यक्त प्रकृति (कारण ब्रह्म) (च) तथा (विनाशम्) व्यक्त प्रकृति, कार्य-रुप प्रकृति सृष्टि (कार्य ब्रह्म) (च तत्) इन (उभयम्) दोनों को (सह) एक साथ (उपासना करने योग्य) (वेद) जानता हैं। वह (विनाशेन) व्यक्त प्रकृति, सृष्टि (कार्य ब्रह्म) की उपासना से (अमृतम्) मोक्ष को (अश्नुते) प्राप्त कर लेता हैं।

भावार्थ– जो असम्भूहज अर्थात् कारण प्रकृति (कारण ब्रह्म) तथा सम्भूति अर्थात् व्यक्त प्रकृति (कार्य ब्रह्म) दोनों की साथ-साथ उपासना करता हैं, वह व्यक्त प्रकृति (कार्य ब्रह्म) की उपासना से मृत्यु को प्राप्त कर लेता है। यहाँ स्वामी शंकराचार्य अव्यक्त प्रकृति को कारण ब्रह्म और कार्य प्रकृति का कार्य ब्रह्म कहते हैं क्योंकि वे प्रकृति को ब्रह्म की माया कहते हैं, जबकि स्वामी दयानन्द सरस्वती प्रकृति की स्वतन्त्र सत्ता स्वीकार अव्यक्त और व्यक्त प्रकृति को जानकर मोक्ष की सिद्धि की बात करते हैं।

ज्ञान का उपयोग देश भर में घूम-घूम कर वैदिक-धर्म के प्रचार में किया था। ग्राम-ग्राम घूमना और शास्त्र-चर्चा करना कर्म ही तो है। फिर ईशावास्योपनिषद् के अगले श्लोक ९ से १४ तक के मन्त्रों में वे ज्ञान और कर्म के समुच्चय की बात भी करते हैं। अस्तु। अब हम देखेंगे कि ज्ञान और कर्म के समुच्चय से अमृतत्व कैसे प्राप्त किया जाता है।

यजुर्वेद के ४० वें अध्याय के ९, १० व ११ मन्त्र असम्भूति और सम्भूति के विषय में है। यही मन्त्र उपनिषद् में १२, १३ व १४ वें श्लोक के रुप में हैं।

अन्धन्तमः प्र विशन्ति येऽसम्भूतिमुपासते।
ततोभूयऽइव ते तमो यऽउ सम्भूत्यां रताः।।

– यजुर्वेद ४०.९

पदार्थ– (ये) जो लोग (असम्भूति) अव्यक्त प्रकृति या कारणरुप प्रकृति की (उपासते) उपासना करते हैं (ते) वे (अन्धम् तमः) न दिखने वाले अन्धकारमय लोक में (प्रविशन्ति) प्रवेश करते हैं। और (ये) जो (उ) लोग (सम्भूत्याम्) कार्यरुप प्रकृति, कार्य ब्रह्म (की उपासना में) (रताः) लगे रहते हैं (ते) वे (उ) वितर्क के साथ (तत्) उस से भी (भूयः) बढ़कर (इव) ही (तमः) अन्धकार में (प्रविशान्ति) प्रवेश करते हैं।

भावार्थ– जो लोक अव्यक्त प्रकृति की उपासना करते हैं वे घोर अन्धकार में प्रवेश करते हैं और जो लोग व्यक्त की उपासना करते हैं वे उससे भी गहरे अन्धकार में जाते हैं।

अन्यदेवाहुः सम्भवादन्यदाहुरसम्भवात् ।
इति शुश्रुम धीराणां से नस्तद्विचचक्षिरे।। यजु. ४०.१०

अन्वयार्थ– (सम्भवात्) प्रकृति या कार्यरुप सृष्टि या कार्य ब्रह्म की उपासना का (अन्यत्) भिन्न (फलम्) फल (आहः) कहते हैं। (असम्भवात्) अव्यक्त प्रकृति (या कारण ब्रह्म) की उपासना का (अन्यत्) भिन्न (एव)ही (आहुः) कहा गया है (इति) ऐसा हमने (धीराणाम्) ज्ञानी लोगों से (शुश्रुम) सुना है। (ये) जिन्होंने (नः) हमारे लिए (तत्) इसकी (विचचक्षिरे) व्याख्या की थी।

यहाँ स्वामी शंकराचार्य कारण प्रकृति या अव्यक्त प्रकृति को कारण ब्रह्म और कार्य प्रकृति अर्थात व्यक्त प्रकृति या सृष्टि को कार्य ब्रह्म का नाम देते हैं, क्योंकि वे ब्रह्म के अतिरिक्त किसी की सत्ता स्वीकार नहीं करतें हैं, परन्तु अव्यक्त और व्यक्त प्रकृति का नाम भी लेते हैं।

अगले मन्त्र मे असम्भूति और सम्भूति को पूरक रुप में ही दिखाया है।

सम्भूतिं च विनाशं च यस्तद्वेदोभयँसह।
विनाशेन मृत्युं तीर्त्वा सम्भूत्यामृतमश्नुते।।

–यजु. ४०.११

अन्वायार्थ– (यः) जो व्यक्ति (असम्भूतिम्) अव्यक्त प्रकृति (कारण ब्रह्म) (च) तथा (विनाशम्) व्यक्त प्रकृति, कार्य-रुप प्रकृति सृष्टि (कार्य ब्रह्म) (च तत्) इन (उभयम्) दोनों को (सह) एक साथ (उपासना करने योग्य) (वेद) जानता हैं। वह (विनाशेन) व्यक्त प्रकृति, सृष्टि (कार्य ब्रह्म) की उपासना से (अमृतम्) मोक्ष को (अश्नुते) प्राप्त कर लेता हैं।

भावार्थ– जो असम्भूहज अर्थात् कारण प्रकृति (कारण ब्रह्म) तथा सम्भूति अर्थात् व्यक्त प्रकृति (कार्य ब्रह्म) दोनों की साथ-साथ उपासना करता हैं, वह व्यक्त प्रकृति (कार्य ब्रह्म) की उपासना से मृत्यु को प्राप्त कर लेता है। यहाँ स्वामी शंकराचार्य अव्यक्त प्रकृति को कारण ब्रह्म और कार्य प्रकृति का कार्य ब्रह्म कहते हैं क्योंकि वे प्रकृति को ब्रह्म की माया कहते हैं, जबकि स्वामी दयानन्द सरस्वती प्रकृति की स्वतन्त्र सत्ता स्वीकार अव्यक्त और व्यक्त प्रकृति को जानकर मोक्ष की सिद्धि की बात करते हैं।

अगले तीन मन्त्रों मे ऐसे विद्या तथा अविद्या पर चर्चा की गई है।

अन्धन्तमः प्र विशन्ति येऽविद्यामुपासते।

ततोभूय इव ते तमो य उ विद्यायाँ रताः।।

– यजुर्वेद ४०.१२

अन्वयार्थ– (ये) जो लोग (अविद्याम्) कर्म की अविद्याम् (उपासते) उपासना करते हैं (ते) वे (अन्धम्) न दिखने वाले (तमः) अन्धकार में (प्रविशन्ति) प्रवेश करते हैं और (ये उ) जो लोग (विद्यायाम्) विद्या, ज्ञान में (रताः) लगे रहते हैं (ते) वे (ततः) उससे भी (भूयः) बढ़कर (इव) ही (तमः) अन्धकार में (प्रविशन्ति) प्रवेश करते हैं। इस मन्त्र में स्वामी शंकराचार्य अविद्या का अर्थ कर्मकाण्ड और विद्या का अर्थ देवोपासना लगाते हैं जबकि स्वामी दयानन्द अविद्या का अर्थ उलटा ज्ञान अर्थात् अनित्य में नित्य, अनात्मा में आत्मा, जड़ में चेतन मानना तथा विद्या का अर्थ तो सच्चा ज्ञान ही होता है। मन्त्र में कहा गया है कि अविद्या और विद्या की उपासना के अलग–अलग फल इस प्रकार है।

विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदोभयँ सह।

अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते।।

– यजु. ४०.१४

अन्ययार्थ– (यः) जो व्यक्ति (विद्याम्) ज्ञान (च) तथा (अविद्याम्) कर्म को (च) और (तत्) इन (उभयम्) दोनों को (सह) एक साथ (सम्पन्न करने योग्य) (वेद) जानता है वह (अविद्यया) कर्म के द्वारा (मृत्युम्) मृत्यु या आवागमन के चक्र को (तीर्त्वा) पार करके (विद्यया) ज्ञान के द्वारा (अमृतम्) मुक्ति को (अश्नुते) प्राप्त कर लेता है।

भावार्थ– जो व्यक्ति ज्ञान तथा कर्म दोनों को साथ–साथ करने योग्य मानता है वह कर्म के द्वारा मृत्यु को पार करके ज्ञान अमृत (मोक्ष) को पा लेता है। अब उपासना के द्वारा हम परमात्मा से ज्ञान के छिपे रहस्य को प्रकट करने की प्रार्थना करे विषय का विराम देते है।

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्।

योऽसावादित्ये पुरुषः सोऽसावहम्। ओ३म् खं ब्रह्म।।

– यजु. ४०.१७

(हिरण्मयेन) स्वर्णिम (पात्रेण) पात्र वा ढक्कन से (सत्यम्) सत्य का (मुखम्) मुख या द्वार (अपिहितम्) ढंका हुआ (अस्ति) है। (यः) जो (असौ) वह (आदित्ये) सूर्य–मण्डल में (पुरुषः) पूर्ण परमात्मा है (सः) वह (असौ) परोक्षरुप (अहम्) मैं (खम्) आकाश के तुल्य व्यापक (ब्रह्म) सबसे अधिक हूँ। (ओ३म्) सबका रक्षक मैं (ओ३म्) ऐसा (मेरा) नाम जानो। इति शुभम्।

*****

कबीरा मन निर्मल भया जैसे गंग नीर।
पीछे–पीछे हरि फिरें कहत कबीर–कबीर।।

योगिराज दयानन्द

– स्वामी ज़गदीश्वरानन्द सरस्वती

महर्षि दयानन्द को समझने में लोगों ने भारी भूल की है। बहूत-से व्यक्तियों को यह भ्रम है की ऋषि दयानन्द केवल एक समाज-सुधारक थे। उन्होने समाज में फैली रुढ़ीयों और पाखण्डों का खण्डन किया और बस। परन्तु वस्तुतः देखा जाए तो समाज सुधार तो स्वामीजी के कार्य का एक अङ्गमात्र था। उनका जीवन तो सर्वतामुखी था। उन्होंने सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक, दार्शनिक, शैक्षणिक और नैतिक सभी क्षेत्रों में काम किया। वे आप्त पुरुष थे, तत्त्वदर्शी एवं परोक्षदर्शी थे। वे आध्यात्मिक विद्या के धनी और उच्चकोटि के योगी थे। अपने लगभग २० वर्ष के अल्प प्रचार-काल में उन्होंने जो महान् कार्य किया वह उन्हीं के शब्दों में बिना योग-बल के असम्भव था। महर्षि का आरम्भिक जीवन योगमय जीवन था। अतः सबसे पूर्व उसी के सम्बन्ध में कथन करते हैं।

चौदह वर्ष की अवस्था में शिवरात्रि के दिन शिवलिंग पर चढ़े नैवेद्य को खाते हुए चूहे को देखकर ऋषिवर के हृदय में सच्चे शिव को प्राप्त करने की लालसा जागी और अपनी बहन तथा प्रिय चाचा की मृत्यु देखकर मृत्युञ्जय बनने की इच्छा बलवती हुई। शिव-प्राप्ति और मृत्युञ्जय बनने का मार्ग उन्हें योगाभ्यास बतलाया गया। अपनी साध को सिद्ध करने के लिए २१ वर्ष की अवस्था में वे अपन धन-धान्य से भरपूर परिवार को, माता-पिता के प्यार और दुलार को तथा बन्धु-बान्धवों और मित्रों के स्नेह को छोड़कर घर से निकल पड़े और चल दिये योगियों की खोज़ में। जहाँ कहीं किसी सिद्ध अथवा योगी के सम्बन्ध में सुनते, वहीं जा पहुँचते। उन्होंने अनेक कुदियों, आश्रमों और मठों का चक्कर लगाया, अनेक महात्माओं का सत्संग किया, परन्तु तृप्ति नहीं हुई। फिर भी वे निराश और हताश नहीं हुए। होते भी क्यों!

गिरे सौ बार भी बिजली अगर किशते तमन्ना पर।
ज़ो हिम्मतदार हैं मायूस कब होते हैं हासिल से।।

उन्होंने अपना प्रयत्न जारी रखा। अन्ततः खोजते – खोजते चाणोद कर्नाली में स्वामी जी महाराज को श्री ज्वालानन्द पुरी और श्री शिवानन्द गिरी के दर्शन हुए। उन्होंने स्वामी जी को आत्मज्ञान-पिपासु जानकर अपने साथ अभ्यास कराया। कुछ समय पश्चात् ये दोनों योगी अहमदाबाद चले गए और स्वामी जी को आदेश दे गए कि एक मास पश्चात् दुग्धेश्वर के मन्दिर में जा पहुँचे। उन्होंने भी स्वामी जी को सुपात्र जानकर उन्हें योग के भेद और रहस्य बताकर योग के अमूल्य रत्नों से मालामाल कर दिया। इस विषय में स्वामी जी अपने स्वलिखित जीवन -चरित्र में लिखते हैं-

वहाँ उन्होंने अपनी प्रतिज्ञा पूरी की और अपने कथनानुसार मुझे निहाल कर दिया। उन्हीं महात्माओं के प्रभाव से मुझे क्रिया-सहित सम्पूर्ण योग-विद्या भलीभाँति विदित हो गई, इसीलिए मैं उनका अत्यन्त कृतज्ञ हूँ। वास्तव में उन्होंने मुझपर एक महान् उपकार किया।

महर्षि यहीं तक सीमित नहीं रहे। जब उन्हें पता लगा कि जो कुछ शिक्षा उन्होंने प्राप्त की है उससे उच्चतर योग-विद्या को जाननेवाले योगी विद्यमान है तो उन्होंने और भी अनेक स्थानों नी घूम-घूमकर योग -विद्या के रहस्य हसतगत किये। परन्तु पूर्ण योगी बनकर भी उन्होंने अपने को छिपाये रखा क्योंकि सिद्धियों के चक्कर में पड़कर वे अपनी शक्ति को नष्ट नही करना चाहते थे। एक बार पायोनियर के सम्पादक सिनट ने स्वामी जी से योग के समत्कार दिखाने को कहा था, उसी का वर्णन करते हुए स्वामी जी ने कर्नल अलकाट और मैंडम ब्लेवस्तिकी को एक पत्र में लिखा था-

जो मैंने सिनट साहब से कहा था वह ठीक है। क्योंकि मैं इन तमाशे की बातों को देखना-दिखलाना उचित

नहीं समझता। चाहे वे हाथ की चालाकी से हों चाहे योग की रीति से हों। क्योंकी योग के किये-कराये बिना किसी को भी योग का महत्त्व वा इसमें सत्य प्रेम कभी नहीं हो सकता, वरन् सन्देह और आश्चर्य में पड़कर उसी तमाशे दिखलानेवाले की परिक्षा और सब सुधार की बातों को छोड़ तमाशे देखने को सब दिन चाहते हैं और उसके साधन करना स्वीकार नहीं करते। जैसे सिनट साहब को मैंने न दिखलाय और न दिखलाना चाहता हूँ, चाहे वे राज़ी रहें चाहे नाराज हों क्योंकि जो मैं इसमें प्रवृत्त होऊँ तो सब मूर्ख और पण्डित मुझसे यहीं कहेंगे कि हमको भी कुछ योग के आश्चर्य काम दिखलाइये, जैसा उसको आपने दिखलाया। ऐसी संसार की तमाश्न की लीला मेरे साथ लग जाती जैसी मैडम एच.पी. ब्लेवस्तिकी के पीछे लगी है। अब जो इनकी विद्या धर्मात्मता की बाते हैं। कि जिससे मनुष्यों की आत्मा पवित्र हो, आनन्द को प्राप्त हो सकते हैं उनका पूछना और ग्रहण करने से दूर रहते हैं। किन्तु जो कोई आता है मैडम साहेब आप हमको भी कुछ तमाशा दिखलाइये। इत्यादि कारणों से इन बातो में प्रवृत्त नहीं करता न करात हूँ। **किन्तु कोई चाहे तो योग-रीति सिखला सकता हूँ जिसे वह स्वयं योगाभ्यास कर सिद्धियों को देख लेवे।**

(महर्षि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन)

योगदर्शन का तीसरा पद विभूति पाद है। इस पाद में योग के ऐश्वर्यों-योग से होनेवाली सिद्धियों का वर्णन है। बहुत-से लोग समझते हैं कि यह सब गप्प है, परन्तु महर्षि दयानन्द इन सिद्धियों को गप्प नहीं समझते; यह उनके उपर्युक्त कथन स स्पष्ट सिद्ध है। इस विषय में स्वामी जी के जीवन की एक अन्य घटना भी अवलोकनीय है-

एक बार एक व्यक्ति ने स्वामी जी से पूछा, भगवन्! पाद क्या सच्चा है?

ऋषि ने उत्तर दिया-आप यों सन्देह करते हैं। योगशास्त्र तो अक्षरशः सत्य है। वह कोई पुराण की-सी कल्पना नहीं है, किन्तु क्रियात्मक और अनुभवासिद्ध शास्त्र है। दूसरी विद्याओं में उत्तीर्ण होने के लिए आप लोग कई वर्ष व्यय करते हैं। इसके लिए यदि आप तीन मास तक मेरे पास निवास करें और मेरे अनुकूल योग-क्रियाएँ साधें, तो इस शास्त्र की सिद्धियों का साक्षात् स्वयं कर लेंगे।

स्वामी जी को अनेक सिद्धियाँ प्राप्त थीं। स्वामी जी अपनी योग- शक्ति के द्वारा दूसरों के मनोगत भावों को जान लिया करते थे।

एक बार एक सज्जन ने स्वामी ती से प्रार्थना की, महाराज! अभ्यास में मन लगाने का भरसक प्रयत्न कर रहा हूँ परन्तु मन टिकता ही नही, संकल्प-विकल्प शान्त ही नहीं होते।

स्वामी जी ने व्यङ्ग करते हुए कहा, मन नहीं टिकता तो भङ्ग भवानी का एक लोटा और चढ़ा लिया करो। यह उत्तर सुन उसे बड़ा आश्चर्य हुआ क्योंकि स्वामी जी को उसके भांग पीने की बात का पता नहीं था।

उदयपुर-वास के दिनों में ऋषिवर बहुत प्रातः नौलखा उद्यान वाले सरोवर के किनारे-किनारे गोवर्द्धन पर्वत की ओर जाया करते थे। एक दिन उद्यान से बहुत अन्तर पर सहजानन्द जी ने देखा कि महाराज जल पर पद्मासन लगाये, योगमुद्रा में कमल-दल की भाँति विराजमान थे।

आगरा-निवास के समय स्वामी जी दोनों समय योगारुढ़ हुआ करते थे। किसी-किसी दिन पहरों अचलभाव से ध्यानावस्थित रहते। लोगों ने उनको १८-१८ घण्टे की समाधि लगाते देखा था। जब महाराज प्रयाग पधारे तो भगवान्दास नामक एक व्यक्ति को महाराज की योगक्रिया देखने की बड़ी प्रबल इच्छा थी। एक दिन उसने छिपकर देखा कि महाराज भूमि से छः इंच ऊपर शून्य में स्थित थे।

एक अन्य पत्र में महाराज ने मैडम ब्लेवस्तिकी को लिखा था-

आत्मा मनुष्य-शरीर में अद्भूत कार्य कर सकती है। संसार में (ईश्वर से लेकर पृथिवी पर्यंन्त) सभी पदार्थों के स्वरुप और गुणों को जानकर मनुष्य अत्यन्त दूर के पदार्थो का दर्शन, श्रवण आदि की शक्ति प्राप्त कर सकता है, जिसे प्राप्त करने में प्रायः असमर्थ रहता है।

(पत्र और विज्ञापन)

एक नवाब ने महाराज से पूछा, क्या कोई ऐसी विद्या है जिससे यहाँ बैठा मनुष्य अन्यत्र की बात जान ले? स्वामी जी ने उत्तर दिया. योगी लोग इच्छा नहीं करते। सबमें गुप्त ब्रह्म-विद्या है, योगी का उसी जानने का उद्देश्य है। अतः यदि योगी चाहे तो योग विद्या द्वारा गुप्त बातों को जान सकता है।

ऋषिवर को यह सिद्धि भी प्राप्त थी। उदयपुर की घटना है। एक दिन श्री राणा सज्जनसिंह जी और सहजानन्द जी आदि सज्जन स्वामी जी के पास बैठे थे। स्वामी जी ने राणा जी से कहा, पण्डित सुन्दरलाल जी यहाँ आ रहे है यदि पहले सूचना दे देते तो उनके लिए यान का उचित प्रबन्ध कर दिया जाता। राणा जी ने कहा, भगवन्! यान तो अब भी भेजा जा सकता है। इस पर स्वामी जी ने कहा, अब तो बैलगाड़ी में आ रहे हैं। उसका एक बैल शुक्लवर्ण है और दूसरे के तन पर लाल धवल धब्बे हैं। वे कल यहाँ पहूँच जाएँगे महाराज का कहना अगले दिन बिल्कुल ठीक सिद्ध हुआ। ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों में योग के बहूमुल्य रत्न बिखरे हुए है। पाठकों की ज्ञानवृद्धि और लाभार्थ कुछ यहाँ उपस्थित किये जाते हैं।

जब मनुष्य अपने आत्मा के साथ परमात्मा के योग को प्राप्त होता है तब अणिमा आदि सिद्धि उत्पन्न होती है। उसके पीछे कहीं से न रुकने वाली गति से अभीष्ट स्थानों को जा सकता है अन्यथा नहीं। (यजुर्वेद भाष्य १७.६७ का भावार्थ)

जो योगी पुरुष तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्राणिधान आदि योग के साधनों से योग (धारणा, ध्यान, समाधिरुप, संयम) के बल को प्राप्त हो और अनेक प्राणियों के शरीरों में प्रवेश करके अनेक पदार्थो वा धनों का स्वामी भी हो सकता है उसका हम लोगों को अवश्य सेवन करना चाहिए। (यजुर्वेद भाष्य १७.७१ का भावार्थ)
जो अच्छें कामों को करके योगाभ्यास करनेवाले विद्वान् का संग और प्रीति से सम्वाद करते हैं, वे सबके अधिष्ठान परमात्मा को प्राप्त होकर सिद्ध होते है।

(यजुर्वेद भाष्य १७.७३ का भावार्थ)

बल-पुरुषार्थ बढ़कर बुद्धि सूक्ष्म रुप हो जाता है कि जो बहुत कठिन और सूक्ष्म विषय को भी शीघ्र ग्रहण करती है। इससे मनुष्य-शरीर में वीर्य वृद्धि को प्राप्त होकर स्थिर बल, पराक्रम, जितेन्द्रियता, सब शास्त्रों को थोड़े ही काल में समझ कर उपस्थित कर लेगा।

(सत्यार्थप्रकाश, तृतीय समुल्लास)

उपासना पद्धति पर प्रकाश डालते हुए योगिराज दयानन्द लिखते हैं- जब-जब मनुष्य लोग उपासना करना चाहें, तब-तब इच्छा के अनुकूल एकान्त देश में बैठकर, अपने मन को शुद्ध और आत्मा को स्थिर करें। तथा सब इन्द्रियों और मन को सच्चिदानन्द लक्षणवाले अन्तर्यामी अर्थात् सबमें व्यापक और न्यायकारी परमात्मा में नियुक्त करें। फिर उसी की स्तुति, प्रार्थना और उपासना को बारम्बार करके अपने आत्मा को भली-भाँति उसमें लगा दें।

(ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, उपासना विषय)

जब आसन दृढ़ हो जाता है, तब उपासना करने में कुछ परिश्रम करना नहीं पड़ता है, और न सर्दी-गर्मी अधिक बाधा करती है। (वही)

ईश्वर के दर्शन कहाँ होते हैं इस तथ्य का सुन्दर निरुपण भी स्वामी जी के शब्दों में पढ़िये-

कण्ठ के नीचे, दोनों स्तनों के बीच में, और उदर के ऊपर जो हृदय-देश है उसको ब्रह्मपुर अर्थात् परमेंश्वर का नगर कहते हैं, उसके बीच में जो गर्त है, उसमें कमल के आकार वेश्म अर्थात् अवकाश एक स्थान है, और उसी के बीच में जो सर्वशक्तिमान परमात्मा बाहर-भीतर एकरस होकर भर रहा है, वह आनन्दस्वरुप परमेश्वर उसी प्रकाशित स्थान के बीच में खोज करने से मिल जाता है। दूसरा उसके मिलने का कोई स्थान वा मार्ग नहीं है।

आचार्य हमें मानव-हितैषी बनाए

- महात्मा चैतन्यमुनि

इस संसार में दूसरों का हित करने में लगे रहने वाले व्यक्ति ही श्रेष्ठ माने जाते है। यही धर्म का भी वास्तविक एवं व्यवहारिक स्वरूप है। गोस्वामी तुलसीदासजी का कथन है- **परहित सरस धर्म नहिं भाई। परपीडा सम नहिं अधमाई।।** अर्थात् दूसरे का उपकार करने के समान कोई धर्म नहीं है और दूसरों को पीड़ा देने के समान कोई अधर्म नहीं है। इस सम्बन्ध में महाभारतकार ने बहुत ही सुन्दर कहा है-

श्रूयतां धर्म सर्वस्यं चाप्यव धार्मताम्।

आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्।।

अर्थात हे संसार के लोगो! तुम धर्म का सार सुनो, सुनकर उसी के अनुकूल आचारण करो। धर्म का सार यह है कि जो अपने प्रतिकूल आचरण है अर्थात् जो व्यवहार आप अपने साथ कराने को तैयार नहीं है, वह दूसरों के साथ भी मत करो... और जैसा व्यवहार दूसरों से तुम अपने प्रति चाहते हो वैसा ही व्यवहार तुम दूसरों के साथ करो...। मगर दूसरे का हित वह तभी कर सकेगा यदि उसमें मानवीय गुणप्रचुर मात्रा में हो।स च्चा मानव बनने की शिक्षा प्राप्त करने के लिए किसी योग्य आचार्य की आवश्यकता होती है। वेद में ज्ञान देने वाले आचार्य के सम्बन्ध में कहा गया है कि-

उत्तिष्ठ ब्रम्हणस्पते देवयन्तस्त्वेमहे। उप प्र यन्तु मरूतः सुदानव इन्द्र प्राशूर्भवा सचा।। (ऋ०१-४०-१), प्रैतु ब्रम्हणस्पतिः प्र देव्येतु सुनृता। अच्छा वीर पर्यं पङ्क्तिराधसं देवा यज्ञें नयन्तु नः।। (ऋ०१-४०-३), प्र नूनं ब्रम्हणस्पतिर्मन्त्रं वदत्युकथ्यम्। यस्मिन्निन्द्रो वरूणो मित्रो अर्यमा देवा ओकांसि चक्रिरे।। (ऋ०१-४०-५) आचार्य क्रियाशील, अज्ञानान्धकार को नष्ट करनेवाला, जितेन्द्रिय, सदा विद्यार्थी के साथ रहनेवाला और विद्यार्थी के व्यसनों को दूर करने वाला हो। हमें ऐसा आचार्य अतिप्रिय हो जो हमारी वाणी को शुभ एवं सत्य से परिपूर्ण करे, हमें लोकहितकारी, वीर तथा यज्ञशील बनाएं हमें वेद-मन्त्रों का ज्ञान दे जिससे हम सबके साथ स्नेह करने वाले, दान देने वाले और द्वैष भावना का त्याग करनेवाले बनें... यजुर्वेद में आचार्य-आश्रम के प्रसंग में कहा गया है-

रेवती रमध्वं बृहस्पते धारया वसूनि। ऋतस्य त्वा देवहविः पाशेन प्रतिमुञ्चामि धर्षा मानुषः।। देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोबाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम्। अग्नषोमाभ्यां जुष्टं नियुनजिम।

अद्भ्यस्त्वौषधीभ्योऽनु त्वा माता मन्यतामनु पितानु भ्राता सगर्भ्योऽनु सखा सयूथ्यः। अग्नीषोमाभ्यां त्वा जुष्टं प्रोक्षामि। (यजु०६-८-९)

आश्रम वह है जहां गौवें रमण कर रही हों। जहां ऐसा आचार्य हो जो आश्रमवासियों में **(सूनि धारय)** उत्तम निवास के कारण ज्ञानों का धारण कराने वाला हो। वह **(देवहविः)** देवताओं के लिए देकर यज्ञशेष को खानेवाला हो। **(ऋतस्य पाशेन)** अपने शिष्यों को ऋत् के पाश से **(प्रतिमुंचामि)** बान्धने वाला हो। उन्हें **(धर्षा)** वासनाओं का धर्षण करने वाला बनाए और **(मानुषः)** मानवमात्र का हित करने वाला बनाए... अगले मन्त्र की संगति आचार्य के साथ लगाएँ तो आगे बताया गया कि जैसा वह आचार्य स्वयं है वैसा ही वह अपने शिष्य को बनाता है- **(देवस्य सवितुः प्रसवे)** सवितादेव की अनुज्ञा में मै **(त्वा)** तुझे ग्रहण करता हूँ **(अश्विनोःबाहुभ्याम्)** प्राणापान के प्रयत्न से मैं वस्तुओं का ग्रहण करता हूँ। **(पूष्णः हस्ताभ्याम्)** पूषा के हाथों से अर्थात् पोषण के दृष्टिकोण से ही मैं प्रत्येक वस्तु को लेता हूँ, **(अग्षिोमाभ्याम्)** तेजस्विता व शान्ति से **(जुष्टम्)** प्रीतिपूर्वक सेवित तुझे मै **(नियुनज्मि)** अपने

प्रतिनिधि के रूप से नियुक्त करता हूँ, लोकहित के कार्यों को करने में तू मेरा निमित्त बनता है। (अद्भ्यः त्वा ओषधीभ्यः) मैं तुझे जलों व ओषधियों के लिए नियुक्त करता हूँ इस सात्विक मार्ग पर चलने के लिए **(त्वा)** तुझे **(माता अनुमन्यताम्, पिता अनुमन्यताम् सगर्भ्यः भ्राता अनुमन्यताम्, सयूथ्यः सखा अनुमन्यताम्)** माता अनुमति दे, पिता भी अनुमति दे, सहोदर भाई अनुमति दे तेरे सभी सखा भी अनुमति दें अर्थात् इस परहित के मार्ग पर ये सभी तेरे सहायक हों। **(अग्निषोमाभ्याम्)** तेजिस्विता और शान्ति से **(जुष्टम्)** सेवित **(त्वा)** तुझे **(प्रोक्षामि)** मै ज्ञान से सिक्त करता हूँ वा लोकहित के कार्य के लिए अभिषिक्त करता हूँ। इसी अध्याय के एक मन्त्र में दिव्य जीवन बनाने के लिए आचार्यों से प्रार्थना करते है-

देवीरापः शुद्धा वोढध्यम् सूपरिविष्टा देवेषु।
सुपरिविष्टा वयं परिवेष्टारो भूयास्म।। (यजु. ६-१३)

(देवीः) ज्ञान की ज्योति से चमकनेवाले **(आपः)** रेतस् के पुंजा वा आप्त **(शुद्धाः)** शुद्ध मनोवृत्तिवाले आचार्यों! **(वोड्ढ्वम्)** आप इन विद्यार्थियों को अपने समीप लाइए, उनका उपनयन कीजिए। ये विद्यार्थी (सुपरिविष्टाः) सुपरिविष्ट हों अर्थात् इन्हें आपके द्वारा ज्ञान का भोजन उत्तमता से परोसा जाए **(देवेषु)** विद्वान् आचार्यों के समीप **(सुपरिविष्टाः)** खूब उत्तमता से परोसे हुए ज्ञान को, अर्थात् आचार्यों के समीप रहकर सब प्राकृतिक देवों से सम्बन्धित ज्ञान को प्राप्त करने वाले **(वयम्)** हम **(परिवेष्टारः)** इस ज्ञान के भोजन के परोसने वाले **(भूयास्म)** बनें। आचार्य का शिष्य ज्ञान प्राप्त करके उस ज्ञान को औरों तक पहुंचाने वाला बनें।

वह आचार्य अपने शिष्यों का शोधन किस प्रकारकरता है इस सम्बन्ध में अगले मन्त्र में कहा गया है- **वाचं ते शुन्धामि प्राणं ते शुन्धामि चक्षुस्ते शुन्धामि श्रोत्रं ते शुन्धामि नाभिं ते शुन्धामि मेढ्रं ते शुन्धामि पायुं ते शुन्धामि चरिस्त्रांस्ते शुन्धामि।।** (यजु ०६-१४) आचार्य विद्यार्थी से कहता है कि **(ते वाचं शुन्धामि)** मैं तेरी वाणी को शुद्ध करता हूँ, जिससे तू इस वाणी को असत्यभाषण से अपवित्र करने वाला न हो। तेरी वाणी सत्य से सदा पवित्र बनी रहे। **(ते प्राणं शुन्धामि)** मैं तेरी घ्राणेन्द्रिय को शुद्ध करता हूँ जिससे तू घ्राणेन्द्रिय से कृत्रिम गन्धों के प्रति आसक्त न हो जाए। **(ते चक्षुः शुन्धामि)** तेरी आंख को शुद्ध करता हूँ, जिससे तू पवित्र देखनेवाला बने। **(ते श्रोत्रं शुन्धामि)** तेरे कान को शुद्ध करता हूँ, जिससे तू इन कानों से अभद्र बातों को न सुनता रहे और न ही परनिन्दा आदि में स्वाद लेता रहे... **(नाभिं ते शुन्धामि)** मै तेरी नाभि को पवित्र करता हूँ, जिससे तेरा जीवन संयम के बन्धन में बन्धकर चले। **(ते मेढ्रं शुन्धामि)** तेरी उपस्थेन्द्रिय को शुद्ध करता हूँ, जिससे तू ब्रह्मचर्य का जीवन बिताते हुए मूत्र-सम्बन्धी समस्त रोगों से बचा रहे..., **(ते पायुं शुन्धामि)** तेरी मल-शोधक इन्द्रिय को शुद्ध करता हूँ, जिससे ठक मलशोधन होते रहकर तू रोगों से बचा रहे। **(ते चरित्रान् शुन्धामि)** तेरे पावों को शुद्ध करताहूँ, जिससे तेरे चरित्र सदा ठीक बने रहे। जो शिष्य अपने आचार्य के सन्निध्य में रहकर इस प्रकार से पवित्र होकर निकलेगा वही वास्तव में मन, वचन व कर्म से मानव हितैषी बन सकता है....

- **महर्षि दयानन्द धाम,** महादेव,
सुन्दरनगर-१७५०१९, हि० प्र०

ऐहसान ऋषि दयानन्द के हम से भुलाए नही जाते।
चाहे जो गिनाए तो गिनाए नहीं जाते।।

ईश्वरः

(ले0-ब्र0 गौत्मदेव, महर्षि दयानन्द वेदविद्या आर्ष गुरुकुल, कुटिया, नलीखुर्द, करनाल)

आर्यसमाजस्य दशसु नियमेषु प्रथमनियम ईश्वरसत्तायाःस्वीकारकोऽस्ति, यदित्थं वर्तते-सर्वासां सत्यविद्यानामन्यच्च ये पदार्थविद्यया ज्ञायन्ते तेषां सर्वेषामादि मूलं परमेश्वरो वर्तते।

आर्यसमाजस्य मान्यतास्ति यद्यदा जीवःकिञ्चित् कार्यकरणे प्रवर्तते तदात्मन्यकरणीयकरणे भयं, शङ्कां, लज्जाञ्चानुभवति। अन्यच्च करणीयकरणे निर्भयतां, निःशङ्कतामन्यच्चानन्दोत्साहमनुभवति। तेऽनुभवाः जीवात्मतो न परन्तु परमात्मतस्सन्ति।

ईश्वरस्य सिद्ध्यामार्यसमाजस्य तर्कोऽस्ति यत् यदा कश्चित् कश्चित् पदार्थं पश्यति तदा द्वितिवध-ज्ञानमुभ्दवति। एकन्तु, तत्पदार्थोऽस्ति अन्यच्च तद्रचनां संदृश्य रचयितुः ज्ञानम्। सृष्ट्यां नाना-प्रकाराणां रचनानां रचयिता स परमेश्वरः सिद्ध्यति। प्राणिनां शरीराणां ज्ञानपूर्वकरचनायाः, नानाप्रकाराणां रत्नानां, धातुगर्भितभूमेः, विविधप्रकाराणां रत्नानां, धातुगर्भितभूमेः, विविधप्रकाराणां वृक्षाणं बीजेषु अतिसूक्ष्मरचनायाः, असंख्यप्रकाराणाम्पत्र-पुष्पकलान्नकन्दमूलादीनां निर्माणमन्यच्च अनेका-नेककोटिभूगोलाः, सूर्यः, चन्द्रीदीनालँलोकानां निर्माणं, तेषान्धारणं, भ्रामणमन्यच्च नियमेषु स्थापनं इति एतासाञ्च प्रक्रियादीनाम्परमेश्वर एव कारण-मस्ति।

आर्यसमाजस्य विश्वासोऽस्ति यद् यथा कर्णाभ्यां रूपस्य, चक्षुर्भ्यां शब्दस्य च ग्रहणन्न भवितुं शक्नोति। तथैवानादिपरमात्मनः दर्शनं शुद्धान्तःकरणविद्या-योगाभ्यासानामभावेऽ सम्भवमस्ति।

यथा-विद्यापठनेन विना प्रयोजनन्न प्राप्यते तथैव योगाभ्यासविज्ञानाभ्यां विना परमात्मापि न दृश्यते।

अतः आर्यसमाजे आर्याणां दैनिकचर्यायां ब्रह्मयज्ञ इति कर्म आवश्यकीयं मत्वा स्वपरम-पितृपरमेश्वरस्य स्मरणस्य विधानमस्ति।

ईश्वरस्य स्थाने केषुचित् काल्पनिकभगवत्सु भ्रान्तो नो भवेदित्यर्थमार्यसमाजस्स्वद्वितीयनियम ईश्वरस्य संक्षितप्तपरिभाषान्ददाति- ईश्वरस्सच्चिदा-नन्नस्वरूपः, निराकारस्सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयालुः, अजन्मानन्तः, निर्विकारोऽनादिः, अनुपम-स्सर्वाधारस्सर्वेश्वरस्सर्वव्यापकस्सर्वान्तर्यामी, अज-रोऽमरोऽभयो, नित्यपवित्रस्सृष्टिकर्ता चास्ति। स ईश्वर एवोपासितव्यः। यथा-परमात्मनोऽनन्तगुणकर्म-स्वभावास्सन्ति। तथैव परमात्मनोऽनन्तनामान्यपि सन्ति। परमेश्वरस्य कान्यपि नामानि अर्नथकानि न सन्ति! कुत्रचित् गौणिकङ्कुत्रचित् कार्तिकमन्यच्च कुत्रचित् स्वाभाविकमर्थमभिधातृणि तज्जगदीश्वरस्य नामानि सन्ति। किन्तु परमात्मनो मुख्यनाम ओ३म् इति निगद्यते।

* * *

आदिः स संयोगनिमित्तहेतुः परस्त्रिकालादकलोऽपि दृष्टः।
तं विश्वरूपं भवभूतमीड्यं देवं स्वचित्तस्थमुपास्य पूर्वम्।। श्वेताश्वतरो0 ६.५।।

वह सबका आदि कारण तथा तत्त्वों के संयोगरूप निमित्त में तुभूत है। वह तीनों कालों से परे तथा कलाओं से रहित। उस अनेक रूपों वाले जगत् के निर्माता, स्वचित्त में स्थित, स्तुति के योग्य की हमें निम्य उपासना करनी चाहिए।

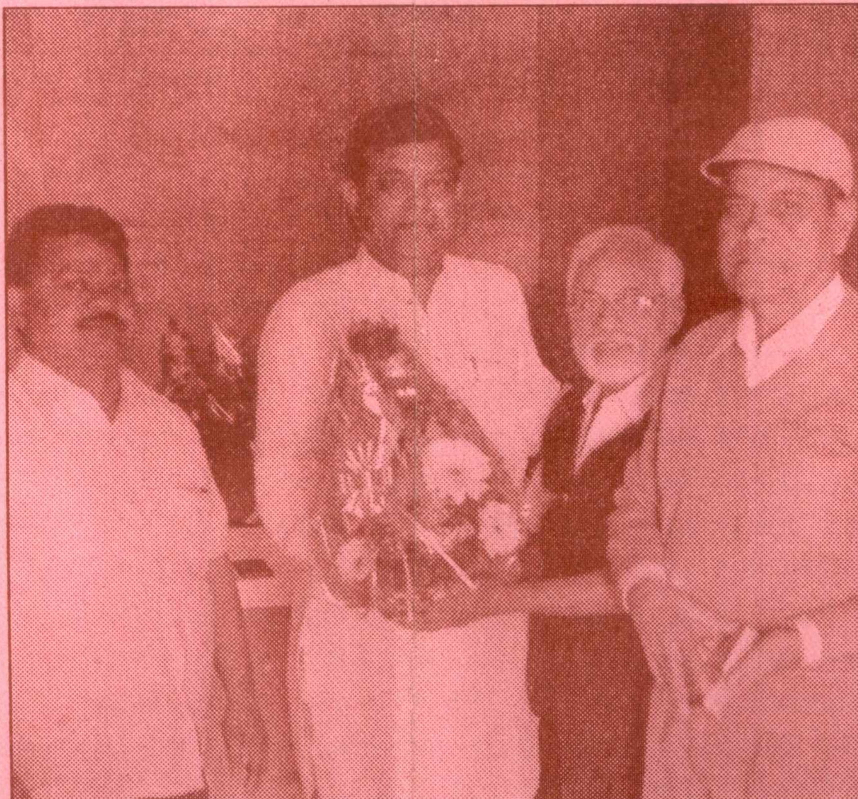

नवनियुक्त नागपुर जिल्हा शिवसेना प्रमुख
श्री. प्रकाश जाधव (पूर्व सांसद)
का स्वागत करते हुए
सभा मंत्री अशोक यादव, रंगलाल प्रजापती
व पं. कृष्णकुमार शास्त्री

आर्य सेवक, नागपुर

प्रति, ______________________________

____

440001 27.02.2018
B3CC 00251338
P141118
₹4.00

प्रकाशक : अशोक यादव, प्रबंधक संपादक एवं मंत्री आर्य प्रतिनिधि सभा
मध्यप्रदेश एवं विदर्भ, नागपुर फोन : ०७१२-२५२५५५६ द्वारा उक्त सभा के लिये प्रकाशित एवं प्रसारित
मुद्रक : फोन :